C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant.

श्रीरामाश्रम-ग्रन्थमाला-पुष्प—१ ला

॥ ॐ ॥

आत्म-प्रकाश

लेखक—

ब्रह्मर्षि श्रीरामजन्म जी ब्रह्मचारी

(वर्तमान समय)

[illegible] श्रीरामाश्रम जी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रकाशक—
'श्रीरामाश्रम सेवा संघ' का प्रधान केन्द्र
ग्राम गंगौली, पोस्ट नियाजीपुर,
जिला शाहाबाद (बिहार)

केन्द्राध्यक्ष—
श्री ललनजी ठाकुर

[सर्वाधिकार सुरक्षित है]

मुद्रक—
श्रीकृष्ण प्रेस,
र, बनारस ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

आत्म-प्रकाश

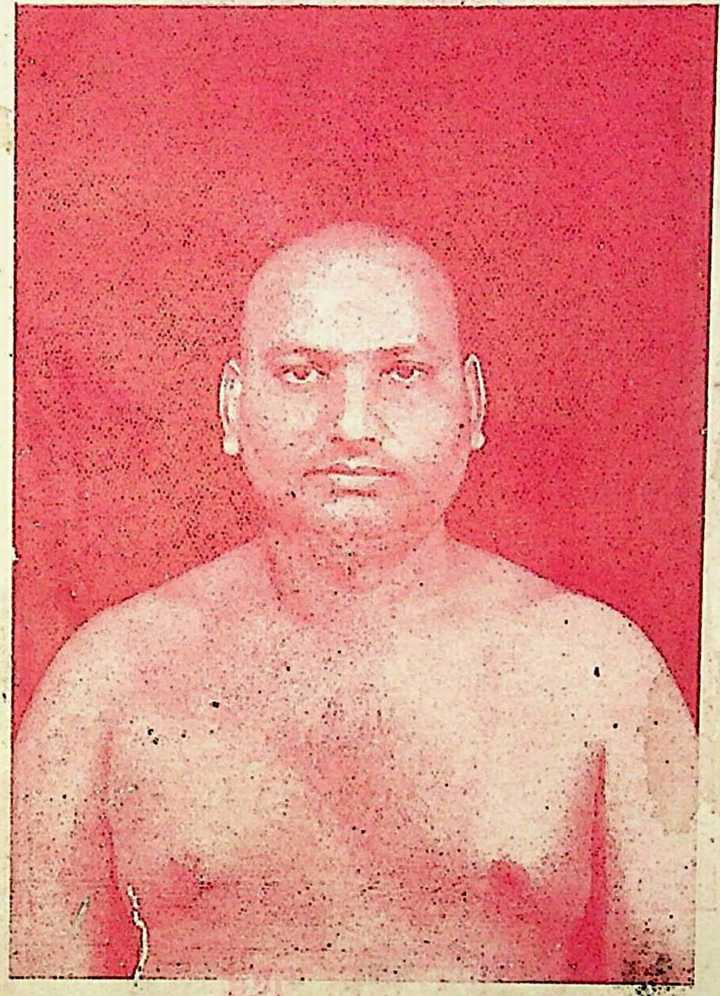

स्वामी श्रीरामाश्रम जी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

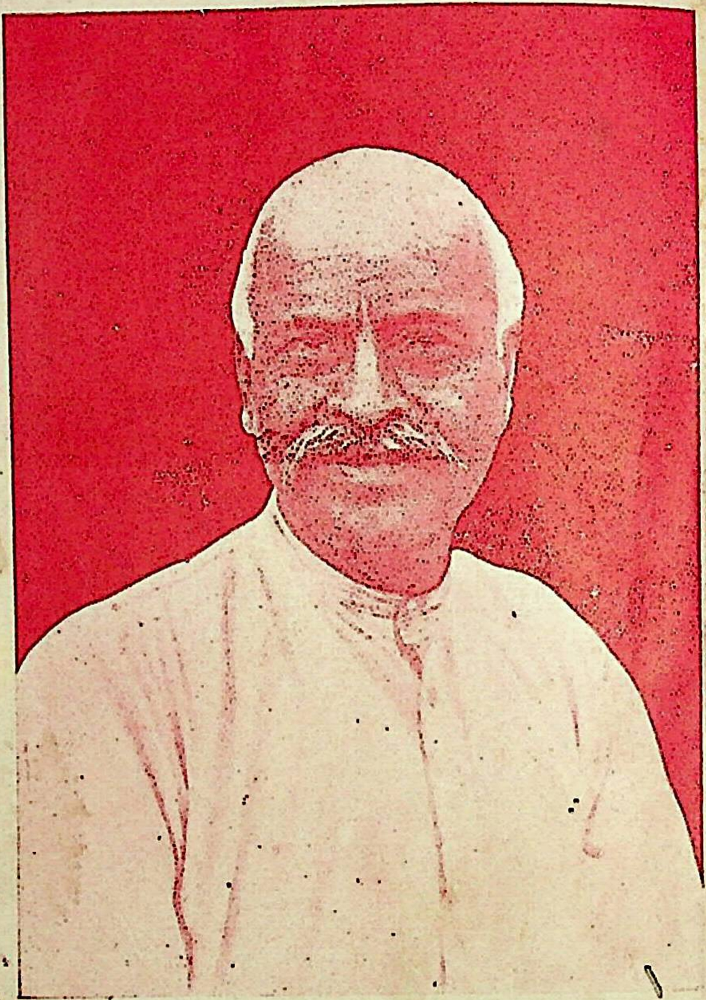

श्री रामदास पाण्डे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

॥ श्रीः ॥

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
पहला परिच्छेद	एक जिज्ञासु और महात्मा	१
दूसरा परिच्छेद	आत्मप्राप्ति के साधन	२३
तीसरा परिच्छेद	जीव और ब्रह्म की एकता	४६
चौथा परिच्छेद	शुद्ध ब्रह्म भेद तथा परिच्छेद से रहित है	६७
पाँचवाँ परिच्छेद	ज्ञानकी सप्त भूमिका	७७
छठाँ परिच्छेद	सर्वोत्कृष्ट प्रणव-उपासना	८६
सातवाँ परिच्छेद	चेतन में उपाधिकृत अनेकता	१०२
आठवाँ परिच्छेद	साधक का कर्तव्य	१४१
नौवां परिच्छेद	प्राणियों का विभिन्न दशाएँ	१५३
परिशिष्ट	संन्यास	१६६

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक का वक्तव्य

कोटिशः धन्यवाद है, उस जगन्नियन्ता जगदीश्वर को, जिसकी प्रेरणा से यह 'श्रीरामाश्रम सेवासंघ' मार्गशीर्ष कृ० ५ सं० २००४ वि० को संस्थापित हुआ। इस संघ का मुख्य उद्देश्य है—विश्वरूप विराट भगवान् की निःस्वार्थ सेवा करना। इसकी स्थापना का श्रेय है प्रांत बिहार, जिला शाहाबाद, पो० निमेज, ग्राम गायघाट निवासी आयुर्वेदाचार्य पं० श्री श्यामबिहारी जी पाण्डेय को, क्योंकि इस ज्ञानयज्ञ के आयोजन निमित्त सर्वप्रथम इन्हीं के हृदय में सर्वेश्वर की प्रेरणा हुई। तदनन्तर इन्होंने इस विषय को मुझ से प्रकाशित किया। श्रीवैद्यजी के इस शुभ आयोजन से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। पश्चात् अन्यान्य प्रेमी सज्जनों से भी स्वीकृति लेकर इसका कार्य चालू हुआ।

भक्तजन प्रथम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामाश्रम जी की पुस्तकें प्रकाशित कर निःशुल्क वितरण करते रहे। जिसका परिणाम यह होता था कि अनाधिकारी व्यक्ति भी पुस्तकें लेकर उनका दुरुपयोग करते थे। उनके पन्ने पसारियों के मसाला धरने अनारी वैद्यों की पुड़िया बाँधने के काम में आते थे इत्यादि-इत्यादि। इस प्रकार पुस्तकें शीघ्र समाप्त होकर अधिकारी-वर्ग के लिए दुस्प्राप्य हो जाती थीं। वर्तमान समय की महँगी आदि कई कारणों से इनके अन्य संस्करण नहीं निकल सकते। अतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रेमी सज्जनों ने इन ग्रन्थों की प्राप्ति तथा प्रचार होते रहने और परस्पर प्रेम एवं बन्धुत्व स्थापित करने के लिए स्थान-स्थान पर केन्द्र स्थापित किया; और प्रधान केन्द्र मेरे यहाँ बनाकर इस पुण्य कार्य के संचालन का भार मुझे ही सौंपा। इस सेवा से मैं अपने को भाग्य शाली समझता हूं।

'श्रीरामाश्रम सेवा संघ' के हर एक केन्द्र ने पुस्तक-प्रकाशन में द्रव्य की सहायता दी है तथा केन्द्रों के अतिरिक्त अन्यान्य सज्जनों ने भी सहायता प्रदान की है। अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इस संघ की पुस्तकों पर लागतमात्र मूल्य रखा गया है तथा पुस्तकें खपत के अनुसार प्रत्येक केन्द्र में भेज दी जावेगी और उनके विक्रय के आय से इनका पुनः प्रकाशन होता रहेगा खपत न होनेवाली पुस्तकें प्रधान केन्द्र को लौटा दी जायेंगी : केन्द्रातिरिक्त अन्यान्य व्यक्ति भी पुस्तकें खरीद तथा प्रकाशनार्थ सहायता दे सकते हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री रामदास जी पाँड़े; ग्राम रामेपुर पो० तथा जि० बलिया ने ५११) पाँच सौ इग्यारह रुपये की सहायता प्रदान करने की कृपा है। एतदर्थ उन्हें हम हार्दिक की धन्यवाद देते हैं। और साथ ही यह आशा करते हैं कि अन्य सहृदय भक्तजन इनका अनुकरण करेंगे।

आपका:—

ललन ठाकुर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant.

ॐ श्रीगणपतये नमः

मंगलाचरण

गणपति शिव हरि शक्ति रवि, गुरुमय आदि अनेक।
नाम रूपमय हो रहा, अस्ति भाति प्रिय एक ॥१॥
इक्षु धतूरा नीम अरु, विल्व मध्य जल एक।
मधुर गरल तिक्तादि जिमि, होत कषाय अनेक ॥२॥
बाहर भीतर एक सम, घट मठादि में व्योम।
कारण कार्य प्रपंच में, एकाक्षर तिमि ओम ॥३॥
आनन्दघन मम रूपसे, व्याप्त सकल संसार।
सुष्ठ समुद्र से वीचि सम, उपजहिं भूत अपार ॥४॥
आप आपसे कह रहा, आप आप में सृष्टि।
आप आपमें रम रहा; आप आपमें दृष्टि ॥५॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ आत्म-प्रकाश प्रारम्भ

पहला परिच्छेद

एक जिज्ञासु और महात्मा

जन्म-मरणरूपी दुःख से अति खेद को प्राप्त हुआ तथा त्रिविध तापों से तापायमान कोई जिज्ञासु पुरुष परमानन्द की प्राप्ति और कारण कार्यरूप प्रपंच की निवृत्ति की इच्छा से एक महात्मा के पास गया। वे कैसे हैं महात्मा ? मन और इन्द्रियों को वश में करने वाले, श्रुति-शास्त्रों के सिद्धान्त को अच्छी प्रकार जानने वाले श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ एवं मधुर भाषण करने वाले हैं। वे महानुभाव श्री जाह्नवी जी के तट पर वट वृक्ष के नीचे सिद्धासन लगाये अर्ध खुले नेत्रों से स्वभाव से ही ध्यानावस्थित हैं। वहाँ उस स्थान को वन, उपवन, बाग-बगीचे तथा पुष्प-वाटिकाएँ, ये अपनी हरियाली, पत्तों एवं फूल-फलों से सुसज्जितकर सुशोभित कर रहे हैं। शुक, सारिका, कोकिल, मयूर तथा भ्रमरादि अपनी-अपनी मधुर एवं मीठी-मीठी बोलियों से मानों भगवत्कीर्तन कर रहे हैं। श्री गंगा जी भी अपनी झिर-झिर एवं कल-नादों से समस्त दिशाओं को आनन्दित कर रही हैं। त्रिविध वायु के झकोरे उस जगन्नियन्ता की परम पावन महिमा का पता बता रही हैं। अधिक क्या, वहाँ मानों शान्त ब्रह्म ही सकल सौन्दर्य को धारण किये सशरीर प्रकट हो गया है। अस्तु।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिस प्रकार धूप से व्याकुल पथिक किसी वृक्षतले जाता है, क्षुधातुर बालक अपनी माता के प्रति गमन करता है तथा भिक्षुक गृहस्थों के पास जाता है, उसी प्रकार वह जिज्ञासु उस महात्मा के पास गया औरसामने समिधा (हवन करनेकी लकड़ी) रख, साष्टांग प्रणाम कर तथा मौन हो स्थित हो गया। तदन्तर जैसे गौ अपने बछड़े को तरफ एवं शरण दाता शरणागत भीरु प्राणी की ओर देखता है, वैसे ही उस जिज्ञासु के प्रति देख कर वह परम दयालु महात्मा बोले—वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो, कहो कुशल तो है ? तुम्हारा आगमन किस निमित्त हुआ ? बताओ, मैं तुम्हारी कौन-सी प्रिय कामना पूर्ण करूँ ? तत्पश्चात् जैसे मयूर मेघ गर्जना श्रवण कर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार वह मुमुक्षु उस सन्त की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गया और बोला—

प्रियानन्द अरु श्रेय कथा, कहिये गुरुवर आप।
मैं शरणागत आपका, तुम बिन मां नहिं बाप ॥

"गुरुवर ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, आपके समान (कल्याण कर्ता) माता तथा पिता भी नहीं हैं, अतः आप यह कहें कि प्रिय, आनन्द और श्रेय वस्तु क्या है ?"

भगवन् ! गुरुवर अर्थात् संसार के समस्त गुरुओं से श्रेष्ठ एक आप ही हैं, क्योंकि इस जगत में वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, व्याकरण, भूगोल, खगोल, रसायन, संगीत, अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी अनेक विद्याएँ हैं, परन्तु उनसे दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं देखी जाती, इसलिए ये विद्याएँ श्रेष्ठ नहीं हैं। जब कि ये विद्या ही श्रेष्ठ नहीं हैं, तो इनके दाता गुरु क्यों कर श्रेष्ठ हो सकेंगे ? श्री स्वामी शंकराचार्य जी ने कहा है :—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वीणारूपसौन्दर्यं तन्त्रीवादनसौष्ठवम् ।
प्रजारञ्जनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते ॥
वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये ॥
शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम् ।
अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञात्तत्त्वमात्मनः ॥

(विवेकचूडामणि)

"वीणा की सुन्दरता और उसकी सुरीली आवाज की रमणीयता प्राणियों के सिर्फ मनोरंजन मात्र है, न कि वह साम्राज्य के लिए है।" "वाणी की पटुता, शब्दों की भरमार तथा शास्त्र-व्याख्या की कुशलता और वैसे ही विद्वानों की विद्वता केवल भोग के ही लिए है, मोक्ष के लिए नहीं।" "शब्दों का जाल महा कानन के समान चित्त की भ्रान्ति का ही कारण है, अतः तत्त्वज्ञ पुरुष के द्वारा प्रयत्न पूर्वक एक आत्म तत्त्व ही जानने योग्य है।"

"दिव्या रूप धन योगसे, मिटै नहीं भवखेद ।
एक वासना नाश से, मुक्ति बतावत वेद ॥"

(ज्ञानामृत)

छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि—एक समय देव मुनि श्री नारद जीने ब्रह्मनिष्ठ श्री सनत्कुमार जी से पूछा—भगवन्! संसार में जितनी भी विद्याएँ हैं, उन्हें मैंने खूब ही पढ़ी तथा उनके अनुष्ठान भी किये हैं, परन्तु मुझे शान्ति न मिली, मेरा शोक दूर न हुआ। तब श्री सनत्कुमार जी ने उन्हें क्रमशः नाम, वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्राण, सत्य, विज्ञान, भक्ति, श्रद्धा

RajGuru Math; Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon:

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निष्ठा, कृति और सुख—इनकी उपासनाएँ बतलाते हुए, इनमें प्रथम से दूसरे को उपासना का फल अधिक एवं स्थाई सुख बतलाया और अन्त में भूमा (ब्रह्म) का उपदेश देकर उस को ही अविनाशी तथा निरतिशय सुख कहा॰ इससे सिद्ध होता है कि लौकिकी विद्याओं में आत्यन्तिक सुख नहीं है।

अर्जुन भी कम विद्वान् न था। उसकी विद्वता का परिचय श्रीमद्भगवद् गीता में उसके प्रश्नों से ही मिलता है। परन्तु फिर भी उसे मोह ने आ घेरा और उसने दीन होकर श्रीहरिसे कहा—"भगवन्! त्रैलोक्य के निष्कंटक राज्य तथा धन धान्य से भरी वसुन्धरा एवं देवताओं के स्वामित्व का भी पाकर मैं नहीं देखता कि यह मेरा इन्द्रिय शोषक शोक दूर हो सके।" इससे भी यही सिद्ध होता है कि विद्या, धन तथा राज्यादि से शोकको निवृत्ति नहीं हो सकती।

आज कल भी पटशास्त्री, महामहोपाध्याय, विशारद, आचार्य आदि की उपाधि प्राप्त करनेवालों की कमी नहीं है, है, परन्तु क्या उनके शोक-मोह दूर हो गये हैं? कदापि नहीं। तब उनके हृदय पुस्तकालय नहीं हैं तो और क्या। ठीक ही तो कहा है—

पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः।
आत्मानन् नैवा जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा॥

'-चारों वेद और अनेक धर्मशास्त्रों को पढ़ जाते हैं, किन्तु जो आत्मा को नहीं जानते तो वे मानों पाकरस के लिए कलछुल के समान ही हैं।" कलछुल तरह-तरह के व्यंजनों में घुमती रहती है, परन्तु इसे उनके स्वाद नहीं मिलते। अतः विद्या से

॰ 'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुख की आशा नहीं पाई जाती। तथा व्यावहारिक विद्याप्रदाता गुरुओं में गुरु शब्द का अर्थ भी नहीं घटता, क्योंकि शास्त्र में कहा है—

"गुशब्दस्त्वन्धकारस्तु रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधत्वात् गुरुरित्यभिधीयते॥"

"गु शब्द का माने अविद्यारूप अन्धकार होता है और रु शब्द उसका निरोधक (नाशक) होता है अविद्यारूप अन्धकारका नाश करने ही से (पुरुष को) गुरु ऐसा कहा जाता है।" अस्तु।

महामते! मैंने माता पिता से भी सुख नहीं पाया। इन लोगों ने मुझे गर्भ में स्थापन कर नव मास तक अत्यन्त कष्ट का अनुभव कराया। वहाँ गर्भ में जेर से बँधा हुआ तथा नीचे सिर और ऊपर पैर करके लटका हुआ, जैसे कुम्हार के आँवाँ में मृत्तिका पात्र जलते हैं, वैसे ही मैं जलता रहा और माता के पेट में जो दुर्गन्धयुक्त मलमूत्र की थैलियाँ थीं, वे मेरे मुख के ही समीप थीं, उनकी दुर्गन्ध से मैं अति दुखित होता था और उनका रस भी मेरे मुखमें आया करता था, इससे भी मुझे अति क्लेश होता था। वहाँ कीड़े मुझे नोच-नोचकर खाते थे। बहुत क्या मैंने वहाँ साक्षात् कुम्भीपाक नर्क का अनुभव किया। गर्भोपनिषद् के गर्भगत दुःख की स्मृति कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं तथा योगवासिष्ठ में श्रीरामचन्द्र ने मुनिवर श्री वसिष्ठजी के प्रति एवं शिवगीता में भगवान् शंकर ने श्रीरामचन्द्र के प्रति गर्भ दुःख का सविस्तार वर्णन किया है। अस्तु।

जब मैं वैष्णवी वायु द्वारा प्रेरित हो माता की संकीर्ण योनि से बाहर निकलने लगा तो मृत्यु से भी बढ़कर कष्टित हुआ:— 'जन्मत मरत दुसह दुख होई' फिर जन्म लेने पर भूख प्यास से दुःखित होता और रोता था। मलमूत्र पर पड़ा हुआ सर्दी, गर्मी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा मक्खी, कीड़े-मकोड़े आदि से नाना प्रकार के कष्ट पाता और चिल्लाता तथा बोलने में असमर्थ होने के कारण अपना मनोभाव किसी से कह नहीं सकता था। माता मेरी प्रसन्नता-निमित्त अनेक उपाय करती, पर मेरे दुःख का ठीक-ठीक निदान न कर पाती थी। हा! बाल्यावस्था में मुझे बड़ा कष्ट मिला। ज्यों-त्यों करके जब थोड़ा बड़ा हुआ तो पिता ने स्वार्थवश विद्या-प्राप्ति के लिए पाठशाला में बैठाया। वहाँ मैं आचार्य से ही भयभीत रहा करता था, जैसे नारकी पुरुष यमराज से जैसे तैसे कुछ विद्या भी पढ़ी, तदनन्तर पिता ने उस स्त्री पुरुष पिशाचिनी की प्राप्ति करायी, जिसके सहवास से बल, बुद्धि, कान्ति और तेज सभी नष्ट हो गये—

'कान्ति तेज अरु बुद्धि बल, हरति शीघ्र ही नारि।
मुदित होहिं धिक आज्ञजन, जाहि रूप अनुहारि॥'

अस्तु। मैंने विषयासक्त होकर परलोक साधन यज्ञादि शुभ कर्म किये नहीं और विषय सेवनसे शरीर भी रोगी एवं निर्बल हो गया, जिससे सांसारिक सुख साधन और उनका उपभोग भी नहीं कर सकता। अतः स्त्री भी दुःख का ही कारण है।

भगवन! पुत्र की अप्राप्ति में प्राप्त होने की तृष्णाग्नि जलाती रही और उसकी प्राप्ति निमित्त किस-किस देवी-देवता को नहीं पूजना पड़ा? भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष तथा राक्षसों की उपासनाएँ करनी पड़ीं, म्लेच्छादि नीच जातियों को सिर झुकाना तथा व्यर्थ में धन व्यय करना पड़ा एवं किसी में श्रद्धा और किसी में अविश्वास करना पड़ा। फलतः किसी पूर्व पुण्य से पुत्र भी हुआ तो उसे रोगादि से बचाने तथा धारण पोषण करने आदि में कष्टों का ही सामना करना पड़ा। यदि उसकी मृत्यु हो गयी तो मानो अपनी ही मृत्यु हो गयी और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि वह किसी तरह जीता बचकर बड़ा हुआ तो आज्ञाकारी, विनयी तथा धर्म परायण न होने से कंटक ही हो गया तथा अब बुढ़ापे में धनोपार्जन की शक्ति न रहने एवं असमर्थ होने से वह मुझे पानी पीने तक को नहीं पूछता, अन्य सेवा कहाँ तक करेगा ? बचन-शस्त्र से बारम्बार प्रहार करता रहता है, जिससे छाती और भी जली जाती है। अतः पुत्र भी अनर्थ का ही हेतु है। 'अपुत्रो गतिर्नास्ति, 'पुत्रहीन की गति नहीं होती यह जो शास्त्र में कहा है, सो तो वैराग्य तथा भक्ति विहीन-पुरुषों से यज्ञादि शुभ कर्म कराने के लिए।

प्रभो ! मैंने बड़े परिश्रम से धनोपार्जन किया। जैसे मधु-मक्खियाँ पुष्परसों को चूस-चूसकर एकत्र करती और उसमें से खाती भी नहीं, वैसे ही मैंने पेट काट-काटकर कृपणता पूर्वक भविष्य सुख की आशा से धन का संग्रह किया, परन्तु उलटा अग्नि, चोर कुटम्बी एवं राजादि से नाश हुआ वह धन दुःख का ही कारण बन बैठा। नीतिज्ञ पुरुषों ने सत्य ही कहा है— धन की दान, भाग और नाश, ये तीन गतियाँ होती हैं। अतिथि अभ्यागत, दीन-दुखीको दान देने से परलोक बनता है तथा भोजन, वस्त्रादि रूप भोग में लगाने से सांसरिक सुख प्राप्त होता है और इन दोनों (दान और भोग) के न करने से धन का नाश अवश्य हो जाता है, क्योंकि लक्ष्मी (धन) का नाम ही चंचला है, वह एक रूप में स्थिर कदापि नहीं रह सकती:—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवेत् ॥

(भर्तृहरिशतक)

गुरुवर ! पुनर्जन्म की हेतु होने से यज्ञ, दान तथा तपादि रूप क्रियाएँ भी अकल्याण रूप ही हैं। मुण्डकोपनिषद् में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भवसागर पार करने में यज्ञादि क्रियाओं को अदृढ़ नौका कहा है। स्वर्गादि लोक भी विनाशी होने से दुःख रूप ही हैं, पुण्य के चुक जाने पर उन लोकों से पुनः मृत्युलोक में ही गिरना पड़ता है। अतः इन लोकों तथा इनके साधनों से मुझे जरूरत नहीं है।

हाये! मैंने आसक्ति पूर्वक परिवार के सुख निमित्त अनेक कुकर्म किये, परन्तु हाथ कुछ नहीं लगा। मैंने सुख के लिए कहाँ-कहाँ भ्रमण नहीं किया, कौन-कौन उपाय नहीं किये, किन-किन मंत्रों का जप नहीं किया, तथा मैंने अपना वर्णाश्रमाभिमान छोड़ किन-किन जातियों की सेवा नहीं की तथा जूठन नहीं खाया? हाय! फिर भी मुझे सुख शान्ति की प्राप्ति नहीं हुई। जिस शरीर के बल, सौन्दर्यादि गुणों पर मुग्ध होकर तथा जिसके अभिमान वश मैंने हिंसा, चोरी, जारी आदि अनेक दुष्कर्म किये. जिसका तरह-तरह के भोजन तथा वस्त्राभूषणों से लाड़-प्यार किया, आज वह शरीर भी साथ नहीं दे रहा है। आज उसी शरीर से नाना प्रकार के रोगों का अनुभव कर रहा हूँ, तथा जर्जरी अवस्था के प्राप्त होने पर भी यह शोक-मोह और तृष्णा द्वारा दुःख ही दे रहा है। श्रीभर्तृहरि जी ने सत्यमेव कहा है—

उत्खात निधिशंकया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः।
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्चमाम्॥

"मैंने धनाशा से पृथिवी तल को खोदा, [रसायन सिद्धि की आशा से] पर्वत के धातुओं को फूँका, [धन-प्राप्ति निमित्त] समुद्र को पार किया, बड़े प्रयत्न से राजाओं को संतुष्ट किया और मन्त्र सिद्धि के लिए मन लगा कर श्मशान में अनेक रात्रियाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बितायीं, परन्तु एक कानी कौड़ी भी हाथ न लगी। तृष्णे! अब भी मेरा पिण्ड छोड़।"

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गं विषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकवत्
तृष्णे जृम्भसि पापकर्मनिरते नाद्यापि सन्तुष्यसि॥

"मैंने अनेक दुर्गम देशों में भ्रमण किया, परन्तु कुछ भी फल न पाया, [अपने] जाति और कुलके उचित अभिमान को छोड़ कर सेवा की, वह भी निष्फल हुई, और अभिमान को छोड़ कर कौवे की तरह डरते-डरते दूसरे के घर भोजन किया। हे तृष्णे! दुर्मति और पाप कर्म में प्रवृत्त तूँ अभी तक सन्तुष्ट न हुई।"

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

"हमने विषयों का उपभोग नहीं किया, किन्तु विषयों ने ही हमें भोग लिया (हमको असमर्थ कर दिया), हमने तप नहीं किया, बल्कि तप ने ही हमें तपा डाला, काल व्यतीत नहीं हुआ, प्रत्युत हम ही व्यतीत हो गये (मरणासन्न हो गये) और तृष्णा जीर्ण न हुई, किन्तु हम ही जीर्ण हो गये।" अतः हे भगवन्! इन लौकिक तथा पारलौकिक भोगों की आशा-भरोसा छोड़ कर मैं शिष्य सर्वप्रकारेण आपकी शरण हूं। मुझ शरणागत पर कृपा करके यह बतलाइये कि श्रेष्ठ, प्रिय और आनन्द वस्तु क्या है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महात्मा बोलेः—

धन्य-धन्य तू धन्य शिष्य, धन्य जनक तव मात ।
धन्य देश महि ग्राम वह, जहँ उपजा तु तात ॥ २ ॥
पुण्य पुराकृत उदय तव, हरि तुझ पर अनुकूल ।
अभिलाषा यह तत्त्वकी, उपजो जो सुख मूल ॥ ३ ॥

"हे शिष्य ! तुझे बार-बार धन्यवाद है तथा उन तेरे माता-पिता को धन्यवाद है, जिन्होंने तुम्हारे जैसा पुत्र पैदा किया और हे तात ! वह देश, पृथिवी (स्थान) एवं ग्राम भी धन्य है, जहाँ तूँ उत्पन्न हुआ है।" "तुम्हारे पूर्व जन्मों के पुण्य उदय हैं तथा भगवान् हरि भी अनुकूल ही हैं, जिसकी वजह से तुझे यह तत्त्व जिज्ञासा उत्पन्न हुई है, जो ब्रह्म सुख की मूल कारण है।"

सुनो शिष्य अब कहत हूँ, वचन सहित दृष्टान्त ।
अनुभव युक्ति प्रमाणयुत, जाते तव दुःखान्त ॥ ४ ॥

"हे शिष्य ! सुनो, अब मैं अनुभव, युक्ति, दृष्टान्त और प्रमाणों के सहित उन वचनों को कहता हूँ, जिनसे तुम्हारे दुखों का अन्त हो जायगा।" कारण जो वाक्य अनुभव, युक्तियुक्त तथा श्रुति प्रमाण से सिद्ध हो, वह यदि एक बालक भी कहे तो मान्य है और जो अयुक्ति एवं श्रुति विरुद्ध हो तो यदि ब्रह्मा या बृहस्पति जी भी कहें तो भी वह नहीं मानना चाहिये।

आत्मा ही प्रिय वस्तु है, श्रेय आतम को जान ।
आतमा ही आनन्द निज, आत्मा विनु नहि आन ॥ ५ ॥

"आत्मा ही प्रिय वस्तु है और श्रेय भी आत्मा को ही जानो, तथा अपना आत्मा ही आनन्द स्वरूप है, एक आत्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के अतिरिक्त दूसरा कोई भी पदार्थ प्रिय, श्रेय तथा आनन्द स्वरूप नहीं है।"

श्रुतियाँ कहती हैं:—

'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति'

(बृहदारण्य २।४।५)

'अपने (आत्मा) ही लिये सब कुछ प्रिय होता है।' 'आनन्दो ब्रह्म' 'आनन्द ब्रह्म है' और 'अयमात्मा ब्रह्म' यह आत्मा ब्रह्म है' इत्यादि। और संसार में देखा जाता है कि संकट पड़ने पर मनुष्य न्यून प्रिय पदार्थ का परित्याग करके अधिक प्रिय वस्तु को रख लेते हैं, जैसे क्षुधादि दुःखों से पीड़ित प्राणी पुत्र का त्याग कर देता है, शरीर पर चोट पड़ने पर आँख, नाक आदि इंद्रियों को बचा लेता है, इन्द्रियों में व्रण (घाव) हो जाने पर जब बचने की आशा नहीं होती तो डाक्टरों से उन्हें (हाथ, पैर आदि) कटवाकर भी जीना चाहता है; वह अन्धा, बहिरा, लँगड़ा-लूला होकर तथा मन और बुद्धि को खोकर भी भ्रान्त पागल होकर प्राणों की रक्षा करना चाहता है, परन्तु जब वह प्राणी मरणासन्न हो जाता है और उससे मर्म विदारक वेदना नहीं सही जाती तो कहता है कि ये मेरे प्राण कब निकल जायँगे, ये मेरा पिण्ड कब छोड़ देंगे। इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा सबसे अधिक प्रिय वस्तु है, क्योंकि क्रमशः सबके लिए सबको छोड़ा गया, परन्तु अन्त में आत्मा को बचा लिया गया उसके लिए प्राण का भी त्याग किया जा रहा है, लेकिन उस अपने (आत्मा) को किसी के लिए भी नहीं छोड़ा जा रहा है।

जैसे सूर्य के जितना ही समीप जाओ, तुम्हें उतना ही अधिक प्रकाश और गर्मी मिलेगी। वैसे ही हे शिष्य! आनन्द स्वरूप होने से आत्मा प्रिय है और उस प्रिय आत्मा से वस्तुओं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की जितनी ही समीपता रहती है उतनी ही वे अधिक प्रिय प्रतीत होती हैं और जितना ही जो दूर रहती हैं वे उतना ही कम प्रिय लगती हैं। पूर्व कथन में आत्मा के सर्वाधिक समीप प्राण है, प्राण से दूर इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से शरीर और शरीर से दूर पुत्र है। नीति ग्रन्थों में भी कहा है—

"त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥"

"सम्पूर्ण के लिए एक का त्याग करे, ग्राम के लिए सम्पूर्ण का त्याग करे, देश के लिए ग्राम का त्याग करे और आत्मा के लिए पृथिवी का त्याग कर दे।" तथा—

"आपदर्थे धनं रक्षेत् दारां रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि॥"

"आपदा के लिए धन की रक्षा करे तथा धन से भी स्त्री की रक्षा करे तथा धन और स्त्रीसे भी आत्माकी निरन्तर रक्षा करे।"

प्रश्न—भगवन्! आत्मा के सबसे समीप प्राण कैसे हैं तथा अन्य सब दूर कैसे हैं?

उत्तर—महाभाग! यद्यपि आत्मा सर्वव्यापी है तथापि उसका आभास बुद्धि में वैसे ही पड़ता है जैसे सर्वव्यापी सूर्य का प्रतिबिम्ब स्वच्छ दर्पण या जल में। भूतों के सतोगुण अंश से बुद्धि बनी हुई है, अतः वह स्वच्छ है। प्रतिबिम्बित होने के ही कारण आत्मा का बुद्धि से समीपत्व है; और उस बुद्धि से प्राणों की ऐसी एकता है कि न तो प्राणों को छोड़ कर बुद्धि रह सकती और न बुद्धि को छोड़ कर प्राण। अतः आत्मा का प्राणों से सर्वाधिक सामीप्य है। प्राणों से इन्द्रियों की क्रियाएँ होती हैं और इन्द्रियों से शरीर की, अतः प्राणों से इन्द्रियाँ तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्रियों से शरीर दूर है। और पुत्रादि पदार्थ तो प्रत्यक्ष ही शरीर से पृथक् हैं, इसलिए वे अति दूर हैं।

हे प्रिय! इस आत्मा के ही लिए महापुरुष तपस्या द्वारा शरीर को सुखा डालते; इन्द्रिदमन तथा मनोनिग्रह करते एवं प्राणायाम-द्वारा प्राणों पर भी विजय प्राप्त करते हैं। इससे जाना जाता है कि शरीरादि से आत्मा श्रेष्ठ और प्रिय है। श्रुति में भी कहा है:—

"इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥"

"इन्द्रियों से परे (श्रेष्ठ) शब्दादि विषय हैं, विषयों से परे मन, मन से परे व्यष्टि बुद्धि, व्यष्टि बुद्धि से परे समष्टि बुद्धि, से परे [अव्यक्त] प्रकृति और प्रकृति से परे पुरुष (आत्मा) है। आत्मा से परे (श्रेष्ठ) और कुछ नहीं है, वही पराकाष्ठा (परम सीमा) और परम गति है। आत्मा सबसे सूक्ष्म और व्यापक है। संसार में जो वस्तु जितनी ही अधिक व्यापक, श्रेष्ठ और प्रिय होती है। इस रीति से पृथिवी से जल, जल से अग्नि, अग्नि से वायु, वायु से आकाश, और आकाश से प्रकृति (माया) सूक्ष्म होने से व्यापक, श्रेष्ठ एवं प्रिय है तथा स्थूल शरीर से इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से प्राण, प्राणों से मन और मन से बुद्धि सूक्ष्म होने से व्यापक, श्रेष्ठ एवं प्रिय है।

हे प्रिय! आत्मा ही आनन्दस्वरूप है। यदि वह आनन्द-स्वरूप नहीं होता तो वह सभी प्राणियों का निरतिशय प्रिय नहीं होता और श्रुति में उसकी प्राप्ति से भय एवं शोक की निवृत्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं कही जाती, यथा—'आनन्दो ब्रह्मणों विद्वान न विभेति कुतश्चन' 'आनन्दस्वरूप ब्रह्म को जानने वाला कभी भी भयभीत नहीं होता। तरतिशो कमात्मवित्, 'आत्मवेत्ता शोक को पार कर जाता है।' और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में तथा छान्दोग्योपनिषद् में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा सनत्कुमार जी के द्वारा आत्मोपदेश होने पर ही अर्जुन और नारद मुनि की शोकनिवृत्ति पायी जाती है; अन्य अनेकों उपायों से नहीं। और भी श्रुति में कहा है—"सुन्दर रूप साधु, वलवान पूर्णायु तथा चतुरङ्गिणी सेना से युक्त जो चक्रवर्ती राजा है, उससे सौगुणा आनन्द मनुष्य गन्धर्व का है (जो मनुष्य यज्ञादि शुभ कर्मों द्वारा गंधर्व हुआ है, वह मनुष्य गंधर्व कहलाता है) मनुष्य गंधर्व से सौगुणा आनंद पितर का है, पितर से सौगुणा आनंद अजान का है जो स्मार्त कर्म करके देवता होता है, वह अजान देव कहलाता है), अजान देव से सौगुणा आनंद कर्म देव का है (जो श्रौत्र-कर्म के द्वारा देवता होता है, वह कर्म देव कहलाता है), कर्म देव से सौगुणा आनंद वसु, रुद्रादि देवताओं का है, वसु, रुद्रादि देवताओं से सौगुणा आनंद इन्द्रदेव का है, इंद्र से शतगुणा आनंद बृहस्पति का है, बृहस्पति से शतगुणा आनंद प्रजापति का है, (जिसे विराट भी कहते हैं) और प्रजापति से सौगुणा आनंद ब्रह्मा का है। ये सब आनंद मिलकर ब्रह्मानंद (आत्मानंद) रूपी समुद्र के एक विन्दुमात्र हैं क्योंकि आत्मानंद अनंत है।" (तै०ट)

हे शिष्य! श्रेय भी आत्मा ही है। श्रेय कहते हैं कल्याण को। यदि आत्मा श्रेय नहीं होता तो आत्मविमुखी सभी जीवों का कल्याण हो जाता, पर एक आत्मज्ञ के सिवा किसी का कल्याण नहीं देखा जाता। जब तक आत्मप्राप्ति नहीं होती, तब तक त्रिविध दुःख तथा जन्म-मरण को फेरी नहीं छूटती श्रुतियाँ भी एक आत्मा को ही कल्याण स्वरूप बतलाती हैं और उसी का चिंतन-संकल्प करने को कहती हैं, यथा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"शिवमद्वितीयं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा सविज्ञेयः"

तत्वदर्शी जिसे कल्याण स्वरूप, अद्वितीय एवं चौथा पाद (माण्डूक्य) (तुरीय) मानते हैं, वह आत्म है, वह जानने योग्य है।"

"तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु"

"मेरा मन उस कल्याण स्वरूप आत्मा का संकल्प करने वाला होवे।"

कठकी श्रुति में भी समस्त अनात्मिक भोगों तथा उनकी प्रतिपादिका विद्याओं को प्रेय और आध्यात्मिक ब्रह्मविद्या तथा आत्मा को श्रेय बतलाया है।

शिष्य बोला—

प्रियानन्द अरु श्रेय का विषयों में किमि भास।
श्री भगवन्! मुझसे कहो, जिससे भ्रम का नास॥६॥

"हे भगवन्! [मैंने माना कि प्रियानंद तथा श्रेयस्वरूप एक आत्मा ही है, परंतु] प्रियानंद और श्रेय की प्रतीति विषयों में क्यों होती है? आप कृपया मुझसे कहें, जिससे मेरा भ्रम नष्ट हो जाय।"

श्री गुरु बोले—

निज आतम के ज्ञान बिनु, विषयों की करि चाह।
चंचल चित के दुःख से, गहत विषय की छाँह॥७॥
विषय पाइ थिर चित्त में, आतम-बिम्ब उद्योत।
अज्ञ मनुज सुख पाइके, कहत विषय से होत॥८॥

"अपने आत्मा के अज्ञान से मनुष्य विषयों की इच्छा करता है तब चित्त चंचल हो जाता है, फिर [चित्तचाञ्चल्य से]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुःख होता है, पुनः दुःख निवृत्ति के लिए उस इच्छित विषय का आश्रयलेता है, विषय को पाते ही चित्त वृत्ति स्थिर होजाती और उस शांत वृत्ति में सुख स्वरूप आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, तब उस सुख को पाकर अज्ञानी मनुष्य कहता है कि मुझे विषय से सुख प्राप्त होता है।"

जैसे मृग अपनी नाभि गंध को भूलकर तमाम जंगलों में गंध ढूँढ़ता फिरता है, वह मूर्ख यह नहीं जानता कि यह सुगंधि मेरे ही अन्दर से आ रही है, वैसे ही अज्ञानी मनुष्य अपने आत्मा को भूलकर विषयों में सुख ढूँढ़ता फिरता है, वह यह नहीं जानता कि इन विषयों में मेरे ही आनंदस्वरूप को झलक आ रही है।

कस्तूरी मृग नाभि महँ, ढूँढ़त विपिन तमाम।
तिमि ढूँढ़त सुख अज्ञ नर, पावत नहिं विश्राम॥

(ज्ञानामृत)

हे सौम्य! स्वच्छ जलाशय पर सूर्य का प्रतिबिम्ब तभी तक स्पष्ट नहीं पड़ता जब तक कि उसका जल वायु से हिलता रहता है। जभी वायु शान्त हुई कि उस पर वह प्रतिबिम्ब स्पष्ट पड़ा। वैसे ही जब तक नाना कामनाओं से अंतःकरण की वृत्तियाँ डाँवाडोल होती रहती हैं तब तक आनन्दात्मा का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता, अतः पुरुष को दुःख होता रहता है और जब मनोवांछित वस्तु मिल जाती है तो थोड़ी देर के लिये अंतःकरण की वृत्ति स्थिर हो जाती है और उसपर आनंदात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, तब उस आनंद प्रतिबिम्ब को वह शांत वृत्ति ग्रहण कर थोड़ी देर के लिये सुखी हो जाती है और फिर जब अन्य पदार्थ की कामना हो जाती है तो वह प्रतिबिम्ब-सुख हाथ से निकल जाता है और पुनः दुःख होने लगता है। यही तमाशा रातदिन होता रहता है, परंतु अविवेकी पुरुष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस सिद्धांत के जाने बिना उसे पहचान नहीं सकते। चिरकाल पर पाये हुए मित्र को देखकर जो प्रथम क्षण में सुख होता है, वह द्वितीय क्षण या दिवस में नहीं रहता, यद्यपि वह मित्र साथ ही रहता है। यह क्यों ? इसमें भी यही रहस्य है। मित्र के बिना चित्तवृत्ति चंचल थी। उसकी अति कामना थी। वह अब मिला। उसको देखते ही चित्तवृत्ति एकाग्र हो गयी और उस पर आत्मानंद का प्रतिबिम्ब पड़ा, अतः सुख मालूम हुआ। दूसरे क्षण या दूसरे दिवस अब उस मित्र की इच्छा नहीं रह गयी। अब अन्य पदार्थों की कामनाओं से चित्तवृत्ति पुनः चंचल हो रही है, अतः उस पर न तो आत्मबिम्ब पड़ता है और न सुख मिलता है। स्त्री, धनादि के द्वारा सुख की प्राप्ति में भी यही बात समझ लेनी चाहिए।

नशीली वस्तुएं नशेबाजों को बहुत प्रिय इसलिए होती हैं कि वे भी चित्तैकाग्रता में कारण होती हैं। जहाँ उनका सेवन किया कि मारे नशा के तमोगुण छा गया, चित्तवृत्ति एकाग्र हो गयी और शरीर तथा संसार की सुधि-बुधि जाती रही, अहंता-ममता निकल गयी। बस, अब कहना ही क्या है ? उस एकाग्र चित्त ने आत्मानन्द को ग्रहण किया और वह सुखी हो गया।

गुरुवर ! जबकि विषय या नशीले पदार्थों से ही आत्मानन्द मिलता है तो आत्म-ज्ञान की क्या जरूरत है ?

महाभाग ! एक तो इन संसारी पदार्थों से वह आत्मानन्द विषयानन्द के रूप में थोड़ी ही देर के लिए मिलता है और जब वह चला जाता है तो पहिले से भी कई गुना उन विषयों में आसक्ति बढ़ जाती है, जिससे उनकी कामनाएँ और तृष्णाएँ अति प्रबल होकर दुःख देने लगती हैं तथा वे जन्म-जन्मान्तर का कारण बन बैठती हैं। मरण-समय जिसमें चित्त आसक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ेगा, उसकी प्राप्ति निमित्त जन्म लेना ही पड़ेगा और जन्म लेने पर गर्भ, जन्म, मृत्यु, जरा तथा नाना प्रकार के रोगों के दुःख भोगने ही पड़ेंगे। प्रियवर! यही तो विचार करने की बात है कि जब कि विषय प्राप्ति के समय क्षणमात्र के कामना के अभाव से आत्म सुख विषय सुख में परिणत होकर प्राप्त हो जाता है तो जो विवेकी पुरुष वैराग्यादि साधनों द्वारा वास्तविक आत्मा के साक्षात्कार द्वारा सर्वदा के लिए कामनाओं का सर्वथा अभाव कर देगा, उसे कितना आनन्द मिलता रहेगा। वह तो जीते जी आत्मानन्द के अपार सुख में निमग्न रहेगा और शरीर छूटने के बाद आसक्ति एवं कामनाओं के अभाव से पुनः शरीर धारण न करेगा।

शंका—प्रभो! जब कि वह वैषयिक-सुख आत्मा का ही विम्ब होता है तो न्यूनाधिक क्यों होता है? आत्मा तो एक रस है।

समाधान—शिष्य! विषयों में जितनी ही अधिक आसक्ति रहती है, उनकी प्राप्ति से उतना ही अधिक चित्त वृत्ति एकाग्र होती है और वह जितना ही एकाग्र होती है उतना ही आत्मानन्द के प्रतिविम्ब को ग्रहण करती है, इस रीति से एक ही सुख में कमी-वेशी हो जाया करती है।

शिष्य बोला—

होत कुतूहल चित्त में, सुन-सुनके उपदेश।
महामते! फिर से कहें, रहे न भ्रमका लेश॥ ९॥

"महामते! आपके उपदेश सुन-सुनकर चित्त में बड़ा कुतूहल हो रहा है, आप सुख-दुःख के विषय में फिर से उपदेश करें, जिससे मुझे लेशमात्र भी भ्रम न रह जाय।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

महात्मा बोले—

ईश्वर कृत जग भूतमय, तामें सुख-दुख नाहिं।
राग-द्वेष में सृष्टि यह, होत जीव उर माहिं॥१०॥

'ईश्वरकृति जो पंचभूत मय यह सृष्टि है, उसमें सुख और दुःख नहीं इन सुख-दुःखों को सृष्टि तो जीव के मन में राग-द्वेष के जरिये होती है।

एक ही अग्नि शीतकाल में सुखद और उष्णकालमें दुःखद प्रतीत होती है, ऐसा क्यों? इसलिए कि जाड़े के समय ठंडक के कारण अग्नि में प्रेम होता है और उष्णकाल में मारे गर्मी के अग्नि से प्रीती नहीं रहती। एक पुरुष को देखकर किसी को जलन पैदा होती है और किसी को सुख होता है। यदि ये दुःख सुख धर्म पदार्थ के होते तो सबको एक-सा होने चाहिए। परंतु बात तो यह है कि उस पदार्थ का धर्म न सुख है, न दुःख उसमें, न तो सुख रखा है और न दुःख। जो पुरुष रागपूर्वक उसमें इष्ट को बुद्धि (सृष्टि) किये रहता है, उसको उसे देखते ही सुख प्रतीत होता है और जो उसमें द्वेष की सृष्टि किये रहता है, उसे उससे सन्ताप पैदा होता है। ईश्वर की रची हुई पंचतत्वमय अस्थि, चर्म, मान्स की स्त्री एक ही रहती है, परंतु जब उसे पिता गोद में लेता है तो उसके चित्त में विकार नहीं आता, क्योंकि उसने उसमें पुत्री भावको सृष्टि की है। उसी को उसका पति देखता और आलिंगन करता है, तो वह काम के विवश हो जाता है, क्योंकि वह उसमें पत्नी को सृष्टि कर देता है और उसका पुत्र तो उसकी गोद में खूब खेलता तथा स्तन-पान करता है, उसके लिए तो वह माता ही है। मान लो कि किसी का पुत्र परदेश में चिरकाल से रहता हो और वह बहुत धन-धान्य से सम्पन्न होकर तथा हाथी पर सवार होकर अपने घर को आता,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो, परंतु कोई वंचक आकर उसके पिता से कह दे कि तुम्हारा पुत्र तो मर गया। यह सुनते ही वह शोकित और मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ेगा। अब विचार करना चाहिये कि ईश्वर कृत उसका पुत्र तो जीता ही है, फिर उसे क्यों महाशोक हुआ? इसलिए कि उसके मन का पुत्र मर गया, उसके मनमें मरा हुआ पुत्र मूर्तिमान् हो गया, इसलिए ईश्वर का रचा हुआ संसार सुख-दुःख नहीं देता, वरन् जीव की सृष्टि ही उसे सुख-दुःख दिया करती है। इसी प्रकार मरे हुए को कोई कह दे कि तुम्हारा पुत्र बहुत धन लेकर सानंद आ रहा है तो उसे हर्ष का ठिकाना न रहेगा, क्योंकि उसका मनोमय पुत्र जीते-जी सकुशल धन लेकर आ रहा है। जब शेर अपनी ओर चलता है तो उस समय उसमें द्वेष-बुद्धि हो जाती है और भयजनित क्लेश होने लगता है और जब वह लौटकर जंगल का रास्ता लेता है तो उस समय उसमें उपेक्षा दृष्टि हो जाती है, अतः तब न सुख होता है, न दुःख। तथा जब वही व्याघ्र बालपन ही से लाड़-प्यार द्वारा अपने अनुकूल बना लिया जाता है, तब तो उसमें राग हो जाता है और वही सुख का कारण बन बैठता है। इस विषय का वर्णन पंचदशी में श्री विद्यारण्य स्वामी ने सविस्तार किया है।

स्वप्नावस्था में जगत का एक भी पदार्थ नहीं रहता, फिर भी वहाँ सुख-दुःख होते ही हैं, अतः जगत् की वस्तु में सुख दुःख नहीं रक्खे हैं।

शंका—भगवन्! मैं यह कैसे मानूँ कि स्वप्न में जगत् के पदार्थ नहीं रहते? वहाँ तो प्राणी प्रत्यक्ष देखते हैं कि "सूर्योदय हो रहा है, श्री गंगाजी में स्नान कर रहा हूँ, भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—इन चार प्रकार के अन्नों को खा रहा हूँ, (कुचल-कुचल कर खाने जानेवाली रोटी, चर्वण आदि पदार्थ भक्ष्य,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पीने के पदार्थ पेय—जैसे दूध, जलादि तथा चाटे जानेवाले चटनी, वलेह आदि लेह्य और चूसे जानेवाले ईख, आम इत्यादि चोष्य कहलाते हैं।) पुष्प-सज्जित सय्या पर शयन कर रहा हूं इत्यादि-इत्यादि। उस अवस्था में प्राणी कभी सुन्दर और खूब तेज घोड़ों से जुड़े हुए रथ में बैठकर गमन करता है, तो कभी रमणीय बाग में टहल कर त्रिविध पवन का आनन्द लेता है। कभी-कभी तो वह निविड़ कानन में जा पहुंचता है और व्याघ्र, भालु, हाथी आदि उसका पीछा करते, कभी सरकारी कर्मचारियों से पकड़ कर कारागृह में जाता और बहुत दुःख पाता है इत्यादि-इत्यादि।

समाधान—प्रिय! वहाँ ईश्वर रचित संसार तो नहीं रहता, परन्तु जीवकृत सृष्टि तो रहती ही है और मैं पहले कह आया हूँ कि जीव को अपनी ही सृष्टि सुख-दुःख दिया करती है। जैसे जब रस्सी में सर्प भ्रम तथा सीपी में रजत भ्रम हो जाता है तो वहाँ ईश्वर कृत न तो सर्प ही रहता और न रजत हो परन्तु जीव भ्रान्तिवश इनकी सृष्टिकर भय तथा लोभ से ग्रसित हो जाता है, वैसे ही स्वप्नावस्था में भी कोई वास्तविक वस्तु नहीं होती। जीव वहाँ निद्रा दोष से नाना प्रकार की सृष्टियाँ अपने आप करता और उनमें रागद्वेष करके सुखी-दुःखी होता है! श्रीव्यास भगवान् ने ब्रह्म सूत्र में कहा है—"सन्ध्येसृष्टि राह हि" "निस्सन्देह श्रुति ने स्वप्न में सृष्टि कही है" जैसे—

"न तत्र रथाः न रथयोगाः न पन्थानो भवन्ति।
अथ रथान्रथयोगान् पथः सृजति॥"

(बृ० ४।३।१०)

"उस स्वप्न अवस्था में न तो [वास्तविक] रथ रहता न घोड़े और न मार्ग ही रहते, परन्तु [यह जीव निद्रा दोष से]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रथ, घोड़े और पथ सब कुछ रच लेता है।" जब सुषुप्ति अवस्था आती है तो मनादि सम्पूर्ण अन्तःकरण और इन्द्रियाँ का अविद्या में लय हो जाता है, अतः जीव की सृष्टि बन्द हो जाती है, क्योंकि जीव मन से ही सृष्टि किया करता है, इसलिए वहाँ सुख-दुःख कुछ नहीं होता। वहाँ तो यह जीव अपने वास्तविक स्वरूप आत्मानन्द का ही उपभोग करता है, परन्तु अविद्या से ग्रसित जीव को पता ही कहाँ रहता कि यह आनन्द अपने असली स्वरूप का ही है। हे शिष्य 'उस अवस्था में संसारी पदार्थ भी तो नहीं रहते। किसी महात्मा ने कहा है—

पोल निकस्यो जगत का, सुप्ति अवस्था माहिं।
नाम रूप संसार की, जहाँ गन्ध भी नाहिं॥

तो कैसे माना जाय कि वह सुख ईश्वर सृष्टि का ही है। और जहाँ पर जीव और ईश्वर दोनों की सृष्टि नहीं है और आनन्द मिल रहा है तो उसे आत्मानन्द ही क्यों न कहा जाय? क्योंकि आत्मानन्द नित्य होने से वह हरएक अवस्था में रहता है। इसी आत्मानन्द का योगीजन समाधि अवस्था में सम्पूर्ण प्रपंच का लय कर उपभोग करते हैं। इसी आत्मानन्द के बिना अर्जुन तथा नारद को शान्ति नहीं मिलती थी और यमराज के द्वारा प्राप्त नर दुर्लभ प्रलोभनों में न पड़ कर महाभाग नचिकेता ने उनसे इसी तत्त्व को प्राप्त किया था। जब इसकी प्राप्ति हो जाती है तो पुरुष की आशक्ति संसारी पदार्थों में नहीं रह जाती, वह अपने को हरएक अवस्था एवं परिस्थितियों से अलग देखकर उनसे हमेशा तटस्थ रहता है, वह धीर पुरुष न तो इष्ट प्राप्ति में हर्षित होता और न अनिष्ट की प्राप्ति में व्याकुल; प्रत्युत वह रागद्वेष से रहित हुआ हर एक अवस्था में तृप्त, शांत एवं सन्तुष्ट रहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरा परिच्छेद

आत्म प्राप्ति के साधन

शिष्य बोला—

आत्म प्राप्ति-साधन कहें, हे कृपालु गुरु आप।
जाते मिटैं अनर्थ सब, जन्म-मृत्यु त्रय ताप॥ १॥

"हे कृपालु गुरु! आप आत्म प्राप्ति का साधन कहें, जिससे जन्म-मृत्यु और तीन तापों के सहित यह कारण-कार्य रूप समस्त अनर्थ (संसार) मिट जाय।"

हे कृपालु! आप मुझसे उस आत्म प्राप्ति के साधन को कहिये, जिससे जन्म-मरण से युक्त तथा दैहिक, दैविक और भौतिक—इन तीन तापों से भरा हुआ संसार अपने कारण माया के सहित निवृत्त हो जाय। दैहिक ताप आधि और व्याधि के भेद से दो प्रकार का होता है। जो रागद्वेष, काम, क्रोधादि विकारों से अन्तःकरण संतप्त होता है, वही मानसिक रोग आधि कहलाता है तथा वात, पित्त और कफ—इन तीन दोषों से उत्पन्न जो गठिया (आमवात), ज्वर, खाँसी, फुंसी-फोड़े आदि रोग स्थूल शरीर में होते हैं, वे सब व्याधि नाम से कहे जाते हैं। तथा जो सूर्यादि देवताओं की प्रेरणा से रूपादि पदार्थों को देखने आदि से उनकी प्राप्ति का तृष्णा-जनित कष्ट होता है अथवा जो देवताओं के प्रकोप से अतिवृष्टि, अनावृष्टि, वायुवेग, अग्नि, भूकम्प आदि से क्लेश होते हैं, वे दैविक ताप कहलाते हैं और जो भूत, प्रेत, पिशाच या पशु-पक्षी, मनुष्यादि

RajGuru Math, Shivala Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूत प्राणियों के द्वारा पीड़ा प्राप्त होती है, वह भौतिक ताप कहलाता है। अस्तु—

इस प्रकार शिष्य का आत्मप्राप्ति का प्रश्न सुनकर महात्मा बहुत प्रसन्न हुए और गद्गद् वाणी से बोले—

सावधान हो शिष्य सुजाना।
साधन सुनहु वेद परमाना॥
दो प्रकार सत शास्त्र बतावैं।
अन्तरंग बहिरंग कहावैं॥

"हे शिष्य! तुम सावधान होकर आत्म प्राप्ति का साधन सुनो। सत्शास्त्र दो प्रकार के साधन बतलाते हैं—एक तो बहिरंग और दूसरा अन्तरंग।"

मल विक्षेप दूर जेहि होई।
चित्त शुद्धिकर साधन सोई॥
यज्ञादिक बहिरंग बखाना।
अन्तरंग विधि आठ सुजाना॥

"हे चतुर शिष्य! जिससे मल और विक्षेप दूर होकर चित्त की शुद्धि होती है, उसी यज्ञादि कर्मों को बहिरंग साधन कहा है और अंतरंग साधन आठ प्रकार का होता है।"

अंतःकरण में मल, विक्षेप और आवरण ये तीन दोष होते हैं, जिनके कारण आत्म-दर्शन नहीं होता, अतः प्रथम उनकी निवृत्ति के लिये यहाँ साधन बतलाये गये हैं। मल उस पाप को कहते हैं जिससे संसारी भोगों में आसक्ति बनी रहती है तथा विक्षेप तो चित्त की चपलता ही कहलाती है, जिसकी वजह से यह चित्त नाना विषयों में दौड़ता रहता है, और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आवरण अज्ञान को कहते हैं। उस अज्ञान में दो प्रबल शक्तियाँ होती हैं· एक असत्वापादक और दूसरी अभानापादक। परमात्मा नहीं है, इस प्रकार की बुद्धि की नास्तिकता को तो अज्ञान की असत्वापादक शक्ति कहते हैं और परमात्मा तो प्रतीत ही नहीं होता, यही बुद्धि आभानापादक कहलाती है।

पूर्वकथित दोषों में से मल और विक्षेप की निवृत्ति तो यज्ञादि वहिरंग साधनों से होती है। यहाँ आदि शब्द से सगुण उपासना भी समझनी चाहिये, उपासना* मानसिक कर्म है, अतः वह वहिरंग साधन में ही है। और आवरणरूप अज्ञान की निवृत्ति गुरुमुख से अवान्तर वाक्य और महावाक्य के विचार से होती है। विवेक चूड़ामणि में कहा है—

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित्कर्मकोटिभिः॥

"चित्त शुद्धि के लिये कर्म है, आत्मवस्तु की प्राप्ति निमित्त नहीं, आत्मवस्तु की प्राप्ति तो विचार से ही होती है, करोड़ों कर्मों से नहीं।"

गीता में भी कहा है—

'योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्म शुद्धये।'

"योगीजन आसक्ति को त्यागकर अंतःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं।"

श्रुति भी कहती है—'धर्मेण पापमपनुदति' धर्म से पाप क्षीण होता है।" सत्य, अहिंसा, पवित्रता, सदाचार, सुसंगति,

---

*उपासना के विषय में देखिये—'कल्याणनिकेतन' का उपासना प्रकरण।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परोपकार, निष्कपटता, ब्रह्मचर्य, आहार शुद्धि तथा ईश्वर का नाम जप, स्मरण, चिंतन और ध्यान आदि ये सब सभी वर्णाश्रमियों के लिए चित्त शुद्धि के साधन हैं।

श्रुति :—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥
(यजुर्वेद)

इस मंत्र से चारों वर्णों का कथन करती है और—

गार्हस्थ्यमाचार्यकुलवासं मौनं वानप्रस्थम्।
(बृहदारण्य)

इससे चारों आश्रमों का यहाँ 'मौनं' से संन्यास समझना चाहिये। तथा :—

तमेतं वेदानुशासनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति।
यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन॥
(बृहदारण्य)

इस मंत्र में "विविदिषन्ति" "ब्रह्मप्राप्ति की इच्छा करते हैं" इससे संन्यास का, यज्ञ से ब्रह्मचारी का, दान से गृहस्थ का और तपसे वानप्रस्थी का संक्षेपतः धर्म जानना चाहियें।*

अब अंतरङ्ग आठ साधनों को कहते हैं—

ज्ञान विरति सम्पति शम आदिक।
पुनि मुमुक्षुता कहह अत्यादिक॥

---

*वर्णाश्रम और वर्णाश्रम के धर्मों को "ज्ञानामृत" के प्रथमाञ्जलि में देखना चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रवण मनन निदिध्यासन सप्तम।
तत्वं पदको शोधन अष्टम ॥

विवेक, वैराग्य, शमादि षट् सम्पत्ति और चौथा साधन मुमुक्षुता है। श्रवण, मनन और सातवाँ निदिध्यासन है तथा श्रुति आदि ने तत् पद (ईश्वर) और त्वं पद (जीव) के संशोधन (अच्छी प्रकार विचार) को ही आठवाँ साधन कहा है।"

विवेकः—

जग मिथ्या अरु ब्रह्म सत, जो जानै करि टेक।
शुचि विरागका जनकयह, साधन प्रथम विवेक ॥२॥

"ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है, इस प्रकार जो पुरुष जान जाय तो यही पवित्र विराग का कारण पहला साधन 'विवेक' है।"

हे शिष्य! श्रुति भी कहती है:—

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या"

"ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है।"

तथा:—

"तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते" (बृहदारण्यक)

"जैसे कर्म से प्राप्त हुआ यह मर्त्यलोक नष्ट हो जाता है, वैसे ही यज्ञादि कर्म से प्राप्त हुआ अन्य लोक (स्वर्गादि) भी नष्ट हो जाता है।" यहाँ प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि कर्मार्जित अन्न, मकान, वृक्षादि नष्ट हो जाते हैं सौ वर्ष पहले के प्राणी आज नहीं हैं और आज के भी कभी नहीं रह जायँगे। राजा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रंक और रंक राजा बस्तीका उजाड़ और उजाड़की बस्ती, जलका थल और थल का जल हो जाता है।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, यम, बसु, वरुण, कुबेर तथा सूर्य चन्द्रादि की भी अवधि शास्त्र में प्रमाणित कर दी गयी है। जब ये लोग भी अपने-अपने विभव, स्थान तथा अधिकार को छोड़-कर नष्ट हो जाते हैं तो इन मर्त्यलोक बासी राजे-महराजे आदि क्षुद्र जीवों को क्या गिनती है? निस्सन्देह यह संसार परिवर्तन शील, क्षणभंगुर एवं विनाशी होने से अनित्य है। और जिसके आधार पर यह विश्व दिखलाई दे रहा है, जिसकी सत्ता से यह बनता-बिगड़ता रहता है, जिसके शासन से संसार की व्यवस्था सुचारु एवं नियमित रूप से चल रही है, जिस नियामक के नियमन से यथाकाल ऋतुओं का परिवर्तन, सूर्य-चंद्रादि का उदय-अस्त तथा सृष्टि-प्रलय का व्यवहार होता है, जिसके भय से वायु दौड़ती है, सूर्य उदय होता है तथा चन्द्र, अग्नि और यम के भी व्यवहार होते रहते हैं, वही जगदाधार, जगदीश्वर परब्रह्म परमात्मा एकमात्र सत्य वस्तु है।

'भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः।
भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति॥
(तै० २।८)

वैराग्यः—

ब्रह्मलोक से भुवन लगि, सभी विषय का त्याग।
काक श्वान-विटकं सरिस, साधन द्वितिय विराग॥ ३॥

ब्रह्मलोक से मृत्यलोक पर्यन्त सभी विषयों को काक और कुत्ता के विष्टा के समान त्याग कर देना दूसरा साधन 'वैराग्य' कहलाता है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

श्री भर्तृहरिजी ने कहा है:—

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयं
सर्वं वस्तु भयान्वित भुवि नृणां वैराग्य मेवाभयम्॥

(वैराग्य शतक)

"भोग में रोग का भय है, कुल में पतन का, धन में राजा का, मौन में दीनता का, बल में शत्रु का, रूप में बुढ़ापे का, शास्त्र में वाद-विवाद का, गुण में दुष्ट का, और शरीर में मृत्यु का भय है। इस जगत् में सब ही वस्तु भय से आच्छादित है, केवल वैराग्य ही पुरुष के लिये निर्भय (स्थान) है।"

बृहदारण्योपनिषद् में वर्णित है कि जब महर्षि याज्ञवल्क्य जी को गृहस्थाश्रम से वैराग्य हुआ और जीवन मुक्ति के विशेष सुख के लिए सन्यास ग्रहण करने लगे, तो वे अपने सम्पूर्ण धन को दो हिस्सों में बाँटकर अपनी कात्यायनी और मैत्रेयी दोनों पतिव्रता पत्नियों को देने लगे कात्यायनी ने तो अपने हिस्से का धन हर्ष पूर्वक स्वीकार कर लिया, परन्तु मैत्रेयी ने उन पति याज्ञवल्क्य से पूछा—भगवन्! 'इस धन से मुझे अमृतत्व की प्राप्ति होगी ?' तब मुनिवर ने कहा—नहीं, अमृत की प्राप्ति कदापि न हो सकेगी। तू इस धन से संसार में केवल सुख पूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सकेगी।' यह सुनकर मैत्रेयी ने परम वैराग्ययुक्त मार्मिक बात कही—

"येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्"

(बृ० २।४।३)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"ऐसा वह धन लेकर क्या करूंगी, जिसमें मैं अमर न हो सकूंगी।" तब महर्षि ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उसे ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। यही है:—वैराग्य। दूसरी जगह श्रुति वैराग्यवानों के मुख से कहती है :—

"किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्मायं लोक"

(बृ० ४।४।२२)

"हम प्रजा से कौन-सी अर्थ सिद्धि प्राप्त करेंगे, जहाँ हम लोगों का इच्छित यह आत्मलोक है। वहाँ ही यह भी कहा है—

"एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति ॥

(बृ० ४।४।२२

"इस आत्मलोक की इच्छा से सन्यासी लोग [सब कुछ छोड़कर) चल देते है।" "आत्मानमेव लोकमुपासीत" "आत्म-लोक की ही उपासना करे।" इस श्रुति में आत्मा को लं क कहा गया है। कितने वैराग्यवान् पुरुष आत्म प्राप्ति की इच्छा से सबका त्याग करते हैं और कितने तो आत्मा को अपरोक्षरूप से जानते हुए भी जीवन मुक्ति के विलक्षण आनन्द के लिए सभी विषयों को छोड़कर विचरण करते हैं। प्रथम श्रेणी के पुरुषों के विषय में श्रुति का यह आदेश है:—

"ब्राह्मण कर्म से उपार्जित लोकों की परीक्षा करके; कि 'कृत (यज्ञादि कर्म) से अकृत (ब्रह्मात्मा) की प्राप्ति नहीं हो सकती वैराग्य (त्याग) को प्राप्त करे।" इस श्रेणीवाला पुरुष विधि-वत् संन्यास लेकर गुरुमुख से वेदान्त शास्त्र का श्रवण, मनन निदिध्यासन पूर्वक तत्वमस्यादि महावाक्यों का विचार करता है। इसमें ब्राह्मण का ही अधिकार है, जैसे पूर्व श्रुति में कहा गया है। दण्ड, कमण्डल, काषाय वस्त्रादि के सहित जो संन्यास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया जाता है, वह विधिवत् या विविदिषा संन्यास कहलाता है और इन सब चिन्हों के बिना जो संन्यास होता है, वह विद्वत् संन्यास कहा जाता है।* तथा दूसरी श्रेणीवाले पुरुषों को श्रुति यों कहती है :—

एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति। न दण्डं न शिखां न यज्ञोपवीतं नाच्छादनं चरति परमहंसः।

"अधिकारी पुरुष इस आत्मा को जान कर ही मुनि होता है। उस इस आत्मा को जान कर ब्राह्मण पुत्रैषणा (पुत्र की इच्छा), वित्तैषणा (धन की इच्छा) और लोकैषणा (लोक प्रतिष्ठा या स्वर्गादि लोकों की इच्छा) का त्याग करके भिक्षाचरण में विचरते हैं। विद्वत् परमहंस बिना शिखा, बिना वस्त्र, बिना यज्ञोपवीत और बिना दण्ड ही विचरता है।" पूर्वोक्त वैराग्य के प्राप्त होने पर शमादि षट् सम्पत्ति रूप तीसरे साधन की प्राप्ति स्वाभाविक ही हो जाती है।

शमादि षट् सम्पत्तिः—

शम-दम श्रद्धा उपरती, समाधान तीतीच्छु।
षट् शमादि सम्पत्ति ये, साधहिं आनन्द-इच्छु ॥ ४ ॥

---

* संन्यास के विषय में देखिए 'ज्ञानामृत' द्वितीयाञ्जलि में।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान—ये सब मिलकर शमादि षट सम्पत्ति नाम का तीसरा साधन होता है। ब्रह्मानन्द के इच्छुक इसका साधन करते हैं।"

शम-दम और उपरतिः—

सर्व वासना-त्याग शम, दम इन्द्रिय-सुनिरोध।
विषयोंसे मुनि वृत्त चित्त, सोई उपरति-बोध॥

"समस्त वासनाओं का त्याग, शम, इन्द्रियों का अच्छी प्रकार निरोध करने के अभ्यास को दम और विषयों से इन्द्रियोंकी अत्यन्त निवृत्ति ही उपरति (उपराम) का ज्ञान है।"

वासना दो प्रकार की होती है—एक शुद्ध और दूसरा अशुद्ध। शुद्ध वासना तो मोक्ष के हेतु है और अशुद्ध वासना बन्धन की। जैसेः—

वासना द्विधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा।
मलिना जन्मनो हेतुः शुद्धा जन्मविनाशिनी॥

(योगवासिष्ठ)

सम, सन्तोष, सत्संग, विचार, मैत्री आदि की वासनाएँ तो शुद्ध हैं और मलीन वासना, लोकवासना, देहवासना और शास्त्रवासना इस भेद से तीन प्रकार की होती हैं। इनमें लोक प्रतिष्ठा अथवा स्वर्ग, ब्रह्मलोकादि की कामना ही लोकवासना कहलाती है तथा मेरी देह का कभी नाश न हो, बल्कि यह सदा-सर्वदा हृष्ट-पुष्ट, बलवान्-रूपवान् एवं आरोग्य बनी रहे, ऐसी इच्छा रखनी तथा पुष्प, माला, चन्दन इत्यादि से इसे सुसज्जित रखना इत्यादि यह देहवासना कहलाती है और पाण्डित्य की इच्छा से शास्त्रोंके पठन-पाठन, अर्थ-विचार, एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुष्ठान में आसक्तिपूर्वक लगे रहना शास्त्रवासना कहलाती है। ये तीनों वासनाएँ जब तक रहती हैं तब तक ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता, अतः मुमुक्षु पुरुषों को इनका त्याग कर देना ही उचित है:—

लोकवासनया जन्तोर्देहवासनयापि च।
शास्त्रवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते॥

(योगवासिष्ठ)

शम (मनोनिग्रह) होनेपर भी यदि दम (इन्द्रियनिरोध) न हो तो वह व्यर्थ ही है, क्योंकि ये प्रमथनशील इन्द्रियाँ मनोनिग्रह कर चुकनेवाले विद्वान् पुरुष के भी मन को बलात्कार हर लेती हैं—विषयों में लगा देती हैं। विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के पीछे जो मन लग जाता है, वह इस पुरुष के सद्-असद्विवेकिनी बुद्धि का इस प्रकार नाश कर डालता है, जैसे वायु जल में नाव को उथल-पुथल कर डालती है:—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥
इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

(गीता २। ६०, ६७)

इसी प्रकार इन्द्रियों को स्वतंत्र छोड़कर केवल मन का निग्रह भी अनर्थ का हेतु हो जाता है। विषयों को मन से ध्यान करने वाले पुरुषों की आसक्ति उन विषयों में हो जाती है, आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है, कामना में रुकावट पड़ने पर क्रोध हो जाता है, क्रोध से मोह हो जाता है, मोह (अज्ञान) से शास्त्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और आचार्य के वचन विस्मृत हो जाते हैं और उस विस्मृति से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, अतः पुरुष हिंसादि निषिद्ध कर्मों में प्रवृत होकर नष्ट हो जाता है—श्रेय साधन से गिर जाता है। (गीता २। ६२, ६३)

इन्द्रियनिरोध का अभ्यास करते-करते जब इन्द्रियों पर पूरा अधिकार हो जाता है और उन इन्द्रियों की विषय प्रवृति रुक जाती है, तो उसे उपरति या उपरम कहते हैं। पुत्र, धन, स्त्री, लोकादि एषणाओं का त्याग तो परम उपरति मानी गयी है। इस अवस्था में पुरुष का चित्त लौकिक और पारलौकिक सभी साधनों से उपराम हो जाता है।

तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान :—

[illegible] दु[illegible], [illegible] तितिक्षा जान ।
श्रद्धा, गुरु श्रुति-[illegible], दृढ़ विश्वास [illegible] ॥ ६ ॥
अति एकाग्रता चित्त की, समाधान कहलात ।
कारण श्रवण वेदान्त का, श्रुति-शास्त्रन विख्यात ॥७॥

"शीत-उष्ण, सुख-दुःख तथा मानापमानादि द्वन्द्वों का सहन करना तितिक्षा; आचार्य और वेदवाक्यों में अभिमान रहित होकर अटल विश्वास रखना श्रद्धा और चित्त की अत्यन्त एकाग्रता समाधान कहलाता है। यह वेदान्त-श्रवण का कारण है, ऐसा श्रुति—शास्त्रों में प्रसिद्ध है।'

जब तक शीतोष्णादि द्वन्दों का सहन नहीं हो सकता, तब तक देहाभिमान का रहना अनिवार्य है और जबतक देहाभिमान है, तब तक वेदान्त शास्त्र के श्रवण पूर्वक अहं ब्रह्मास्मिरूप निर्गुणोपासना में अधिकार नहीं होता, क्योंकि 'अव्यक्ता हि गतिदुःखं देहवद्भिरवाप्यते (गीता) 'देहभिमानियों के द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'अव्यक्त (निर्गुण) ब्रह्म की गति दुःख पूर्वक प्राप्त होती है' अतः द्वन्द्वों की ओर ध्यान न देना साधक का परम कर्तव्य है।

श्री भगवान् ने गीता शास्त्र में कहा है:—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥
(अ० २।१४।१५)

"परन्तु हे अर्जुन ! ये क्षणभंगुर तथा अनित्य, इन्द्रिय और विषयों के संयोग शीत-उष्ण एवं सुख-दुःखादि द्वन्द्वों के देनेवाले हैं, अतः हे भारत ! इनका सहन कर। क्योंकि हे नरश्रेष्ठ ! सुख-दुःख में समान रहनेवाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य समझा जाता है।" अस्तु—

तन, मन और धन सब कुछ श्रीगुरु के चरणकमल में अर्पण कर निरभिमान हो जाने तथा उनकी वेद वाणी में विश्वास रख कर श्रवण करने से ब्रह्मविद्या फलवती होती है अर्थात् वह ब्रह्मज्ञान का प्रकाश करती है, अन्यथा अभिमान तथा संशयग्रस्त पुरुष का पतन हो जाता है। श्रुति भगवती कहती है:—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

"जिसकी परमात्मदेवमें परम भक्ति है और जैसी परमात्म-देव में है, वैसी ही गुरुदेव में है, उसी महात्मा पुरुष के हृदय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में कही हुई ब्रह्मविद्या प्रकाश करती है।" तुलसीदास जी कहते हैं:—

सतगुरु वैद्य वचन विश्वासा।
संयम यह न विषयकर आसा॥

"भवरोग शमन करने के लिए एकमात्र सद्गुरु ही वैद्य है, परन्तु उसके वचन में विश्वास तथा विषय नैराश्य रूप संयम होना चाहिए।"

श्रद्धावाल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥
अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥
(गीता ४।३९-४०)

"संयतेन्द्रिय, तत्परायण तथा श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान प्राप्त करता है। ऐसा पुरुष ज्ञान को पाकर अति शीघ्र शान्ति प्राप्त करता है। अज्ञानी, श्रद्धा रहित और संशयात्मा पुरुष नष्ट हो जाता है। [अज्ञानी सत्संग में पड़ कर ज्ञानी हो सकता है तथा ईश्वर और महात्मा की महिमा सुनकर अश्रद्धालु व्यक्ति भी श्रद्धावान् हो सकता है] परन्तु संशयात्मा पुरुष के लिए न तो यह लोक है न परलोक और न उसके लिए कहीं सुख है।" कारण, वह माता, पिता, भाई, मित्र, स्त्री, आचार्य, सुहृद् आदि सबके वचनों में संशय करता रहता है कि 'ये मेरे अपकार के लिए तो नहीं कहते।' तथा भोजन में सन्देह करता है कि 'इसमें विष या कोई अपवित्र वस्तु तो नहीं मिला दी गयी है।' परलोक के विषय में 'न मालूम वे लोक हैं या नहीं' इस प्रकार संशय कर उनके साधनस्वरूप [illegible] आदि कर्मों को नहीं करता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

यह ईश्वर के विषय में भी 'जब उसे वेद-शास्त्र निर्गुण, निराकार तथा मन इन्द्रियों के अविषय बतलाते हैं तो क्या ठीक है कि वह है' इस प्रकार सन्देह करके मोक्ष साधन भी नहीं करता। इस प्रकार वह अभागा लौकिक, पारलौकिक एवं ब्रह्म सुख से वंचित रह जाता है। अस्तु—

समाधान तो शमादि पाँच सम्पत्तियों की परिपक्वास्था ही है। जब मनेन्द्रियों पर पूरा अधिकार प्राप्त हो जाता है, संसार की हरएक वस्तुओं से चित्त उपराम होकर किसी भी बहिरंग साधन के करने की इच्छा नहीं होती, शीतोष्ण तथा सुख-दुःखादि द्वन्द्वों को बिना घबराहट के स्वाभाविक ही सहन करने की शक्ति हो जाती है और श्रुति तथा आचार्य के वचनों में श्रद्धा और विश्वास होकर चित्त से सारे संशय एवं कुतर्क निकल जाते हैं तो उस जिज्ञासु पुरुष का अन्तःकरण शान्त और स्वच्छ दर्पण की तरह निर्मल हो जाता है। उसकी बुद्धि सद्गुरु के मुखारविन्द से निकले हुए वेदांत शास्त्र के अद्वैत सिद्धांत के यथार्थ ग्रहण करने में समर्थ हो जाती है। इस प्रकार शमादि षट् सम्पत्ति रूप तीसरे साधन के अद्वैत आत्मा का ज्ञान हो जाता है। श्रुति में कहा है:—

> शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितः।
> श्रद्धावित्तो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत्॥
> (बृ० ४।४।२३)

"शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु, समाहित और श्रद्धा से युक्त होकर अपने अन्तःकरण में ही आत्मदर्शन करे।"

मुमुक्षुता:—

कारण सहित प्रपञ्च से, कदा मोक्ष मम होय।
अस अचला मति जो हिये, शुभ मुमुक्षुता सोय॥ ८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"कारण अविद्या के सहित इस संसार से मेरा कब मोक्ष होगा, इस प्रकार की जो हृदय में अचला बुद्धि होती है, वही शुभ मुमुक्षुता कही जाती है।"

जन्म-मरण, आधि-व्याधि तथा शोक-मोहरूप संसार का मूलकारण अविद्या है। इसीको माया, प्रकृति, अज्ञान तथा शक्ति आदि विविध नामों से कहा गया है। जब तक यह बनी रहती है, तब तक इस अशुभ संसार की निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति नहीं होती तथा दुःख की अत्यंत निवृत्ति एवं परमानंद की प्राप्ति ही मोक्ष का स्वरूप है। यद्यपि भोजन से क्षुधा दुःख, वस्त्र से शीतोष्णादि दुःख तथा नाना औषधियों से वात, पित्त और कफ से उत्पन्न हुए रोग दुःख निवृत्त किये जाते हैं तथा सुषुप्ति एवं प्रलय में भी दुःखाभाव हो जाया करता है; तथापि दुःख की अत्यंत निवृत्ति नहीं होती, "पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं; पुनरपि जननी जठरे शयनं" बार बार जन्म-मरण, गर्भवास आदि की फेरी लगी ही रहती है। परन्तु जब स्वस्वरूप के ज्ञान द्वारा अविद्यारूप अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है तो फिर संसार के गमनागमन का कष्ट कैसे हो नष्ट हो जाता है, जैसे नींद के टूटते ही स्वप्न दुःख दूर हो जाता है। विवेक, वैराग्य और शमादि षट्सम्पत्ति का भली भाँति साधन हो जाने पर उस अधिकारी पुरुष के हृदय में इस प्रकार की मोक्ष की प्रबल इच्छा स्वाभाविक ही जागृत होती है* तब वह ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के पास विधिवत् जाता है। हे शिष्य! श्रुति का भी यही आदेश है:—

"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।"

*ऐसी इच्छा ही मुमुक्षुता तथा वह पुरुष मुमुक्षु कहलाता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"उस आत्मज्ञान के लिए वह अधिकारी पुरुष समित्पाणि होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाय।"

श्रवणादिः—

जीव-ईश की एकता, प्रतिपादक वेदान्त।
श्रवण, श्रवण कहलात है, गुरुमुख से सिद्धांत ॥९॥
श्रवण किये सिद्धांत का, सन्तत सहित हुलास।
युक्तियुक्त चिन्तन करन, मनन वेद-प्रकास ॥१०॥
तजि अनात्म जग-देह को, चिन्तन आत्माकार।
[illegible] ॥११॥

जीव और ब्रह्म की एकता रूप सिद्धान्त का प्रतिपादक जो वेदांत है, उसका गुरुमुख से श्रवण करना ही 'श्रवण' कहलाता है। उस श्रवण किये हुए सिद्धान्त का निरंतर उत्साह के साथ युक्ति पूर्वक चिन्तन करना 'मनन' है, ऐसा वेद कहता है। अनात्म-वस्तु जो संसार और शरीर है, उसका चिंतन छोड़कर चित्त-वृत्ति के प्रवाह को बारम्बार आत्माकार करना ही 'ध्यान' (निदिध्यासन) नाम से निर्धारित किया गया है।"*

ब्रह्मनिष्ठ श्रीयाज्ञवल्क्यजी ने भी बृहदारण्योपनिषद् में अपनी पत्नी मैत्रेयी के प्रति कहा है:—

आत्मा अरे वा मैत्रेयी द्रष्टव्यः।
श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

(२।४।५)

*"श्रुतस्यार्थस्योपपत्तिश्चिन्तनं मननम्" "विजातीयप्रत्ययतिरस्कारेण सजातीयप्रत्ययप्रवाहीकरणं निदिध्यासनम्"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"अरे मैत्रेयी ! आत्मा देखने तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने के योग्य है।" और भी कहा है:—

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्य उपपत्तिभिः

"यह आत्मा श्रुति वाक्यों से तो सुनने योग्य है और युक्तियों से मनन करने योग्य है।"

हे शिष्य ! इस पूर्वकथन के अनुसार जब पुरुष श्रवण और मनन कर चुकता है, तो सुविचार नाम की दूसरी भूमिका में पहुँच जाता है और जब निदिध्यासन करने लगता है, तब तनुमानसा नाम की तीसरी भूमिका में तथा जब निदिध्यासन के परिपक्व हो जाने पर समाधि की दशा में पहुँचता है, तो वह सत्वापत्ति नाम की चौथी भूमिका में पहुँचा हुआ माना जाता है।

प्रश्न—योगिन् ! समाधि क्या कहलाती है ?

उत्तर—

निदिध्यासन-अभ्यास से, दृढ़ता आत्म स्वरूप ।
विस्मृत जगकी वस्तु सब, तात ! समाधि अनूप ॥१२॥

"हे तात ! निदिध्यासन के निरन्तर अभ्यास से जब आत्म स्वरूप में दृढ़ता होकर जगत् की सभी वस्तुएँ विस्मृत हो जाती हैं, तो वही अनुपम समाधि कहलाती है।"

ध्याता ध्यान सुध्येय का, जब लगि रहे विकल्प ।
सह-विकल्प सुसमाधि वह, त्रिपुटीगत अविकल्प ॥१३॥

"ध्याता, ध्यान और ध्यानरूप त्रिपुटी का जब तक ख्याल बना रहता है, तब तक वह सविकल्प समाधि और जब [सविकल्प समाधि का अभ्यास बढ़ जाने पर] इस त्रिपुटी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

का अभाव हो जाता है, तब वह निर्विकल्प समाधि कहलाती है।"

जब लगि रहै समाधिमें, तब लगि नर निर्द्वन्द्व।
जब उथान प्रारब्धवश, ज्यों-का-त्यों जगद्वन्द्व ॥१४॥

अतः 'तत्त्वमसि' वाक्य का, बारम्बार विचार।
करि ब्रह्मात्म अपरोक्षसे, करै जगत निःसार ॥१५॥

"जब तक पुरुष समाधि में रहता है तब तक तो संसार के हर्ष-शोकादि द्वन्द्वों से रहित रहता है, परन्तु वह प्रारब्धवश जभी समाधि से उठता है तभी ज्यों-के-त्यों जगत्द्वन्द्व खड़े हो जाते हैं [जाग्रत् का प्रारब्धभोग सर्वदा समाधि में रहने नहीं देता] अतः पुरुष को चाहिये कि 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य के निरन्तर विचार के द्वारा ब्रह्मात्मा (जीव और ब्रह्म की अभेदता) का अपरोक्ष (साक्षात्कार) करके जगत् को निस्सार (मायामय मिथ्या) कर दे।"

जब तक संसार का अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म से एकता होकर संसार मायामय मिथ्या नहीं हो जाता तब तक केवल आत्मानुसन्धानपूर्वक लाख समाधि करो, न तो अविद्या का नाश हो सकता, न संसार की सत्यता जा सकती है और न शान्ति सुख मिला सकता। जब तक आत्मा को शरीर से अलग कर उससे शुद्ध ब्रह्म से एकता का बोध प्राप्त न कर लिया जायेगा, तब तक तो वह ज्ञान अधूरा ही रह जायगा। जब तक समाधि में है, तब तक तो जगज्जाल भूला हुआ है, परन्तु समाधि से ज्यों ही उठा कि उसके लिए संसार ज्यों-का-त्यों अपना द्वन्द्वमय भयानक दृश्य खड़ा कर देता है। कोई हमेशा समाधि में तो रह हो नहीं सकता। जाग्रत् का भोगरूप प्रारब्ध संसार को सामने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर ही देगा, क्योंकि ऐसा ईश्वर का संकल्प है कि "ज्ञानी-अज्ञानी सबको प्रारब्ध भोग कर ही नष्ट हो।" परन्तु जो तत्पद और त्वंपद के विचार द्वारा अद्वैत ज्ञान प्राप्त कर संसार की हरएक वस्तु में निज परमात्मा रूप की सत्ता विद्यमान पाता और उसमें ही मस्त रहता है, उस तत्त्वदर्शी पुरुष के लिए जगत् का अस्तित्व रह ही नहीं जाता, अतः वह नित्य-निरन्तर ब्रह्मानन्द में डूबा हुआ आत्यन्तिक सुख का अनुभव करता रहता है। जगत् के पदार्थ उस पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। यही है सच्ची समाधि। शास्त्र में कहा है:—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
[illegible] ॥

"समाधि के द्वारा मल (वासना) रहित चित्त को आत्मा में लगानेवाले पुरुष को जो सुख होता है, वह वाणी से नहीं कहा जा सकता, उस समाधि की अवस्था में वह समाधिस्थ पुरुष, उस सुख को अन्तःकरण के द्वारा स्वयं अनुभव करता है।" तथा गीता में भी कहा है:—

'सुखमात्यन्तिकं [illegible] ।'

(अ० ६।२१)

'जो आत्म सुख आत्यन्तिक तथा इन्द्रियों से परे हैं वह सिर्फ [शुद्ध और सूक्ष्म] बुद्धि से ग्रहण किया जाता है।

गुरुवर ! जब कि 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य के ही विचार से ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान द्वारा अविद्या की निवृत्तिपूर्वक संसार का मिथ्यात्व एवं सर्वत्र ब्रह्म दर्शन रूप सच्ची समाधि प्राप्त होती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तहैव साधनचतुष्टय-सम्पन्न होकर जिज्ञासु पुरुष तत् और त्वं पद का ही विचार क्यों न करे, श्रवणादि साधनों की क्या आवश्यकता है ?

. हे सोम्य ! अन्तःकरण में संशय और विपर्यय, ये दो दोष रहते हैं। ये वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं होने देते। पुरुष इनके ही कारण वस्तु को देखते हुए भी उसको ठीक-ठीक पहचान नहीं सकता, अतः इनकी निवृत्ति के लिए श्रवणादि साधन कहे गये हैं। जैसे कहा है:—

"विपर्यय-संशय युगल, करत भेद भ्रम आदि।
लखे नहीं अपरोक्षहू, वस्तु अतः श्रवणादि ॥"

(ज्ञानामृत)

तथाः—

"भावना विपरीता या चासंभावना शुक।
कुरुते प्रतिबन्धं सा तत्त्वज्ञानस्य नान्यथा ॥"

(योगवासिष्ठ)

"हे शुक ! जो असम्भावना (संशय) और विपरीत भावना (विपर्यय) है, वही प्रतिबन्ध करती है, तत्वज्ञान का दूसरा प्रतिबन्धक नहीं है।"

संशय दो प्रकार का होता है—एक प्रमाणगत और दूसरा प्रमेयगत। प्रमाण जो वेद-शास्त्र हैं, वे जीव और ब्रह्म के अभेद का प्रतिपादन करते हैं या भेद का ? यह प्रमाणगत संशय कहलाता है और प्रमेय जो जीव चेतन तथा ईश्वर चेतन हैं, इनका भेद सत्य है या अभेद ? यह प्रमेयगत संशय कहलाता है। तथा जीव और ईश्वर में वस्तुतः भेद है, और यह जगत् सत्य है, इस प्रकार का निश्चय विपर्यय कहलाता है, जैसेः—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीव-ईश का भेद ही, अथवा भेद बखान।
वेद-शास्त्र में है क्रिया, संशय यह परमान ॥ १६ ॥
जीव-ईश चैतन्य में, है अभेद या भेद ?
यह संशय सुप्रमेयगत, करत पुरुष-उर खेद ॥ १७ ॥
जीव-ईश-चैतन्य में, भेद वस्तुतः सत्य।
वीपर्यय संसार सत, कबहूँ नाहिं असत्य ॥ १८ ॥

गुरुमुखसे श्रुतिशास्त्रोंके श्रवण तथा मनन करनेसे संशय दूर होता है और निदिध्यासन के करने से विपर्यय नष्ट हो जाता है। जैसेः—

श्रवण-मनन छेदन करहिं, संशय मूल-समेत।
ध्यान विपर्यय को सहित मूल नष्ट करि देत ॥१९॥

जिसके चित्त में संशय और विपर्ययरूप दोष नहीं हैं, ऐसे उत्तम अधिकारी के लिए श्रवणादि साधनों की कोई आवश्यकता नहीं है। उसे तो केवल तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के विचार से ही बोध की प्राप्ति हो जायेगी। श्रुति में भी कहा हैः—

"श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
श्रुत्वा च सततं ध्यायेदेते दर्शनहेतवः

"श्रुति वाक्यों का श्रवण करना चाहिये तथा (उस श्रवण किये हुए का) अनेक युक्तियां से मनन करना चाहिये और श्रवण एवं मनन करने के बाद ध्यान (निदिध्यासन) करना चाहिए; [क्योंकि] ये श्रवणादि आत्मदर्शन के कारण हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकरण का उपसंहार:—

पूर्व-पूर्व की सिद्धि से, पर-परमें अधिकार।
अन्तरंग साक्षात् है, श्रुति-गुरुवाक्य-विचार ॥ २० ॥

"पूर्वोक्त प्रथम-प्रथम साधनों की सिद्धि होने पर दूसरे-दूसरे साधनों में अधिकार प्राप्त होता जाता है और अन्त में जो श्रुति और आचार्य के द्वारा कथित तत्त्वमसि आदि महावाक्यों का विचार है, वही आत्मज्ञान प्राप्ति का साक्षात् अन्तरंग साधन है।"

अन्तरंग नाम समीप का है और बहिरंग नाम दूर का जो आत्मज्ञानप्राप्ति के जितना समीप हैं वे उतना ही अन्तरंग और जो जितना ही दूर हैं वे उतना ही बहिरंग कहलाते हैं। इस रीति से कर्म, उपासनादि भी अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान-प्राप्ति में हेतु हैं, परन्तु वे विवेकादि से दूर हैं, अतः वे बहिरंग साधन कहे जाते हैं और उन बहिरंग साधनों से समीप होने से ही विवेकादि चार अन्तरंग कहे जाते हैं। लेकिन इनमें भी जिसके बाद जो है, उससे वह अन्तरंग है। और इनके बाद श्रवणादि में अधिकार होता है, अतः श्रवणादि के सामने ये सब बहिरंग हो जाते हैं। श्रवणादि में भी श्रवण से मनन और मनन से निदिध्यासन अन्तरंग है। फिर जब तत्त्वमस्यादि महा-वाक्यों के विचार की योग्यता प्राप्त करके विचार किये जाने लगता है, तब तो एक मात्र यह विचार ही साक्षात् अन्तरंग साधन हो जाता है। इसके सामने श्रवणादि तीन साधन तथा विवेकादि साधन चतुष्टय और यज्ञादि कर्म, उपासनादि सभी साधन बहिरंग हो जाते हैं, क्योंकि विचार के हाथ लगते ही शेष अन्य साधनों से कुछ भी प्रयोजन नहीं रह जाता, और सिर्फ उस एक विचार से ही तत्वज्ञान हो जाता है। इस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यज्ञादिसे अन्तःकरण शुद्ध होकर विवेक, विवेक से वैराग्य, वैराग्य से शम, शम से दम, दम से उपरति, उपरतिसे तितिक्षा, तितिक्षा से श्रद्धा, श्रद्धा से समाधान, समाधान से मुमुक्षुता, मुमुक्षुता से श्रवण, श्रवण से मनन, मनन से निदिध्यासन और निदिध्यासन के बाद तत् और त्वम् पदका विचार और विचार से आत्माका ब्रह्मसे अभेद ज्ञान होता है। उस अभेद ज्ञान से कारण सहित कार्य की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

तीसरा परिच्छेद

जीव और ब्रह्म की एकता

शिष्य बोला—

ग्रसित उरग भव-त्राण, हो भगवन्! तव वचन अमि।
करत श्रवण पुट-पान, नहिं अघात मन आज मम ॥१॥
साधन चार स्वरूप, श्रवणादिक मैंने सुने।
सुनि उपदेश अनूप, गये सकल संशय मम ॥ २ ॥
किहि विचार वह होत, तत्त्वम् असि इस वाक्य का।
गुरुवर! करैं उदोत, मुझ सेवक के हृदय में ॥ ३ ॥
ब्रह्म जीव के रूप, पृथक्-पृथक् मुझसे कहो।
पुनि दो एक स्वरूप, नाथ! कहें समुझाइ के ॥ ४ ॥

"हे भगवन्! संसार सर्प से ग्रसित मेरे लिए आपके वचन अमृत तुल्य हैं। श्रवण मार्ग से पान कर आज मेरा मन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भ्रम नहीं होता। मैंने विवेकादि चार साधन तथा श्रवणादि के स्वरूप भली भाँति सुने। आपके अनुपम उपदेश सुनकर मेरे सम्पूर्ण संशय कूच कर गये। गुरुवर! 'तत्त्वमसि' इस महा-वाक्य का वह विचार किस तरह होता है? मुझ सेवक के हृदय में उसका प्रकाश करें। नाथ! ब्रह्म और जीव के स्वरूप को मुझसे पृथक्-पृथक् कहें और फिर दोनों की एकता करके मुझसे समझाकर कहें।"

महात्मा बोले—

अनिर्वाच्य उत्पत्तिरहित, प्रकृति ब्रह्म में दीप।
विद्याऽविद्या होति पुनि, करति जीव अरु ईश ॥५॥

"हे शिष्य! अनिर्वाच्य और उत्पत्तिरहित (अनादि) प्रकृति ब्रह्म में रहती है और वही अविद्या और विद्या (माया) रूप से होकर क्रमशः जीव और ईश्वर को कर देती है ॥५॥

वस्तुतः तीन काल-अबाधित एक ही सद्रूप ब्रह्म है और उसी में एक कल्पित प्रकृति रहती है। उस प्रकृति के विषय में सत् या असत् कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यदि उसको असत् कहें तो उससे इतना विशाल जगत् उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि असत् वन्ध्या पुत्र से किसी भी कार्य की उत्पत्ति आज तक नहीं देखी गयी तथा यदि उसे सत् कहें तो ज्ञान होने पर समाधि एवं प्रलय में भी उसकी निवृत्ति नहीं होनी चाहिये क्योंकि सत् पदार्थ तो वह है जिसका अभाव किसी काल में न हो। अतः वह प्रकृति सत् और असत् से परे अनिर्वचनीय एवं उत्पत्तिरहित अनादि है। वही प्रकृति अपने गुणों के तारतम्य से विद्या और अविद्या रूप से हो जाती है। जैसे श्रुति कहती है :—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"विद्या चाविद्या स्वयमेव भवति"

"प्रकृति विद्या और अविद्या के रूप में स्वयमेव हो जाती है।"

गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी के शब्दों में श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी के प्रति कह रहे हैं—

"तेहिकर भेद सुनो तुम सोऊ।
विद्या अपर अविद्या दोऊ।"

अस्तु—

माया:—

रज-तमसे जो ना दबे, सतगुण शुद्ध प्रधान।
माया ताहि बखानिये, आश्रय ब्रह्म समान॥ ६॥

"जो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से नहीं दबे अर्थात् रज-तम के वश में न होकर उनको ही दबाये रखे, वह शुद्ध सतोगुण-प्रधान माया कहलाती है और वह सामान्य ब्रह्म (शुद्ध चेतन) के आश्रय रहती है।"

अविद्या:—

रज-तम से दबि जात जो, मलिन सतोगुण सोय।
सो कूटस्थ आश्रय रहे, नाम अविद्या होय॥ ७॥

"जो सतोगुण-रजोगुण और तमोगुण से दब जाता है अर्थात् उसे रजोगुण और तमोगुण अपने वश में करके मलीन कर डालते हैं, वह मलिन सतोगुण प्रधान अविद्या कहलाती है तथा वह कूटस्थ आत्मा के आश्रय रहती है।" यहाँ माया का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आश्रयदाता वह शुद्ध चेतन ही अविद्या के आश्रय देने से तथा अन्तःकरण रूप उपाधि के कारण कूटस्थ आत्मा कहलाता है।

तत्पद (ईश्वर)

माया का आधार पुनि, माया में आभासु।
अरु माया ये तीन मिलि, तत्पद कहिये तासु ॥८॥

"माया का आधार (अधिष्ठान) जो शुद्ध चेतन, तथा उस शुद्ध चेतन का माया में पड़ा हुआ आभास और माया—ये तीनों मिल कर तत्पद (ईश्वर) होता है।"

त्वम्पद (जीव)

भास अविद्या में परो, और अविद्याधार।
पुनः अविद्या जब मिले, त्वम्पद ता निरधार ॥ ९ ॥

"अविद्याका आधार (अधिष्ठान) जो शुद्धचेतन (कूटस्थ) तथा उस शुद्धचेतन का अविद्या में पड़ा हुआ आभास और अविद्या ये तीनों मिलकर त्वम्पद (जीव) होता है।"

तत्पद ईश्वर जानिये, त्वम्पद जीव सुजान।
त्वम्पद लक्ष्य कूटस्थ है, तत्प. लक्ष्य समान ॥१०॥

"हे सुजान शिष्य ! तत्पद तो ईश्वर को जानो और त्वम्पद जीव को। तत्पद (ईश्वर) का लक्ष्य सामान्य चेतन है और त्वम्पद (जीव) का लक्ष्य कूटस्थ आत्मा।"

तत् और त्वम्पद की एकताः—

तत्त्व पद की एकता, असिपद वर्णत वेद।
भागत्याग करि लक्षणा, निवृत होत उर-भेद ॥११॥

"तत्पद (ईश्वर) और त्वम्पद (जीव) की एकता को वेद 'असि' पद के द्वारा वर्णन करता है। जीव और ईश्वर के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय में जो हृदय का भेद है, वह भागत्याग लक्षणा के द्वारा निवृत्त हो जाता है।"

वस्तुतः शुद्ध चेतन में तो कोई भेद है नहीं। वह तो एक ही अद्वितीय है:—'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' (श्रुति), परन्तु उसमें भेद तो माया और उपाधियों का किया हुआ है और वे उपाधियाँ प्रतीतिमात्र मिथ्या हैं। जब वे मिथ्या ही हैं तो उनका किया भेद कब सत्य हो सकता है ? इसीसे तो साम-भेद का संकेत है—"तत्त्वमसि" 'वह तू है' तथा छांदोग्य श्रुति में इसी महावाक्य को महर्षि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु के प्रति सात वार कहा है। श्री तुलसीकृत रामायण में भी काकभुशुण्डि जी गरुड़ से ईश्वर और जीव में अनेक प्रकार के भेदों का वर्णन करते हुए अन्त में कहते हैं कि यह सब भेद मायाकृत झूठा है, परंतु विना हरि कृपा के यह निश्चय भी नहीं हो सकता। अर्थात् क्योंकि यह झूठा है, अतः हरि कृपा से नष्ट हो जाता है :—

"मायावस्य जीव अभिमानी।
ईसवस्य मया गुनखानी॥
परवस जीव स्ववस भगवन्ता।
जीव अनेक एक सिरिकन्ता॥
मृषा भेद यद्यपि कृत माया।
बिनु हरि जाय न कोटि उपाया॥"

कहीं-कहीं मृषा के स्थान पर मुदा पाठ है। मुदा का अर्थ भी झूठा ही होता है। अस्तु। जब ब्रह्माश्रित त्रिगुणात्मिका प्रकृति में क्षोभ होकर गुण न्यूनाधिक हो जाते हैं तो वही प्रकृति शुद्ध सतोगुण की प्रधानता से एक जगह माया और मलिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सतोगुण की प्रधानता से दूसरी जगह अविद्या कही जाती है। जैसे एक ही मिट्टी से बने हुए शीशे एवं-काँच में स्वच्छता की कमी-वेशी होती है, वैसे ही माया और अविद्या में स्वच्छता की न्यूनाधिकपना होती है। ये माया और अविद्या दोनों ही एक ही शुद्ध चेतन के आश्रय रहती हैं। जहाँ पर माया रहती है, वहाँ पर वह चेतन ब्रह्म कहलाता है और जहाँ पर अविद्या रहती है, वहाँ पर वही चेतन कूटस्थ या आत्मा कहलाता है। चूँकि ये दोनों स्वच्छ हैं, इसलिए एक ही शुद्ध चेतन का प्रतिबिम्ब इन दोनों में पड़ता है। यह सन्देह नहीं करना चाहिए कि निराकार चेतन का प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है? निराकार आकाश का प्रतिबिम्ब जल में देखा जाता है, जिसके कारण थोड़ा भी जल बहुत गम्भीर प्रतीत होता है तथा आकाश का शब्द रूप प्रतिबिम्ब किसी जलाशय के तटपर अथवा आलीशान मकान में बोलने से प्रतिध्वनि के रूप में पड़ता है। अस्तु। माया में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब तो अपने अधिष्ठान (ब्रह्म) के साथ ईश्वर कहलाने लगता है और वह परोक्ष एक सर्वज्ञ, मुक्त, अन्तर्यामी एवं सृष्टि-सर्जनकर्ता तथा जीवों का कर्म फलदाता हो जाता है; और अविद्या में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब अपने अधिष्ठान (कूटस्थ) के साथ जीव कहलाने लगता है और वह अपरोक्ष अनेक, अल्पज्ञ, बद्ध, कर्मों का कर्ता तथा भोक्ता हो जाता है। इस प्रकार माया और अविद्या के सारे धर्म ईश्वर और जीव में प्रगट होने लगते हैं। यह सब भेद अनादि काल से चला आ रहा है—पता नहीं कब से हुआ। जब अनेक जन्मों की सुकृति एकत्र होती है तो जीव संसार बन्धन का अनुभव करता और उससे ऊबकर उसकी निवृत्ति के लिए सद्गुरु की शरण जाता तथा उनके द्वारा लक्षणवृत्ति पूर्वक तत्वमसि आदि महावाक्यों का विचार करता है तब यह सारा भेद मिट जाता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा वह निखिल दुःख द्वन्दों से मुक्त होकर आनंद रूप ही हो जाता है।

किसी वाक्य के सीधे अर्थ को वाच्य-अर्थ या शक्य अर्थ कहते हैं। जैसे किसी ने कहा—'घटमानय' 'घट ले आओ' यहाँ घटका वाच्यार्थ घड़ा हुआ। परन्तु जब यथार्थ वक्ता के वाक्य के वाच्यार्थ से अर्थ की सिद्धि नहीं होती, और जब उस वाच्यार्थ के सम्बन्धी अर्थ को ग्रहण किया जाता है ता वही लक्षण कहलाती है 'शक्य संबंधः लक्षणा, 'वाच्यार्थ के सम्बन्ध को लक्षण कहते हैं।' वह लक्षण 'केवल लक्षणा' और 'लक्षित-लक्षणा के भेद से दो प्रकार की होती है—'शक्य साक्षात् सम्बंध केवल लक्षणा, 'जिसका शक्य (वाच्यार्थ) से साक्षात् सम्बन्ध हो, वह केवल लक्षणा, और 'शक्यपरम्परासम्बन्धः लक्षित लक्षणा' 'शक्य (वाच्यार्थ) से परम्परा सम्बन्ध वाली लक्षित-लक्षणा कहलाती है' जैसे—'द्विरेफो रौति' 'दो रेफ (रकार) रोता है' यहाँ जड़ रकार तो रो नहीं सकता।' अतः उसका रोने वाले चैतन्य से सम्बन्ध है और रोने वाले चैतन्य प्राणियों में भी दो रेफयुक्त नाम वाले भ्रमर से सम्बन्ध है। अतः अत्र इस अर्थ की सिद्धि हुई कि 'भ्रमर रोता है।' अस्तुः—

पूर्वोक्त केवल लक्षण भी जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और जहदजहल्लक्षणा के भेद से तीन प्रकार की होती है। उनमें—

'शक्यार्थपरित्यागेन तत्सम्बन्ध्यर्थान्तरे वृत्तिः जहल्लक्षणा'

वाच्यार्थ के त्यागपूर्वक उस (वाच्यार्थ) के सम्बन्धी अर्थ में जो वृत्ति होती है, वह जहल्लक्षणा कहलाती है।' जैसे किसी ने कहा—'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' 'गंगा में डेरा (घर) रहता है' तो यहाँ गंगा का शक्य (वाच्य) अर्थ जल प्रवाह हुआ, जिसमें डेरा का रहना असम्भव है, अतः इस वाच्यार्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को छोड़कर इसके सम्बन्धी तट का ग्रहण किया गया तो 'तट पर घर है' इस अर्थ की सिद्धि हुई। इस प्रकार तट में लक्षणा वृत्ति करने से वक्ता के वाक्य का यथार्थ अभिप्राय निकल गया। और:—

शक्यार्थापरित्यागेन तत्सम्बन्ध्यर्थान्तरे वृत्तिः अजहल्लक्षणा

वाच्यार्थ के अत्यागपूर्वक उस (वाच्यार्थ) के सम्बन्धी अर्थ में जो वृत्ति होती है, वह अजहल्लक्षणा कहलाती है। जैसे, किसी ने कहा—'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' कौओं से दही की रक्षा करो' तो यहाँ काक शब्द का वाच्यार्थ केवल कौओं से ही दही की रक्षा करनी है, अपितु दही का भक्षक (कौओं के सम्बन्धी) अन्य बिलाव आदि से भी रक्षा करनी है। यहाँ कौओं और कौओं के सम्बन्धी अन्य बिलाव आदि में लक्षणा वृत्ति करनी ही अजहल्लक्षणा कही गयी है। तथाः—

शक्यैकदेशपरित्यागेनैकस्मिन् देशे वृत्तिः जहदजहल्लक्षणा।

"वाच्यार्थ के किसी एक देश का परित्याग करके, किसी एक देश में जो वृत्ति होती है, वह 'जहदजहल्लक्षणा' (भागत्याग लक्षणा) कहलाता है। जैसे किसी ने कहा—'सोऽयं देवदत्तः' 'वही यह देवदत्तः है' यहाँ 'वह' शब्द परक्ष और 'यह' शब्द अपरोक्ष का वाचक है। इन दोनों में विरोध है, क्योंकि एक ही काल में परोक्षपना और अपरोक्षपना दोनों धर्म एक ही देवदत्त में रह नहीं सकते। अतः 'वह' (परोक्षपना) और 'यह' (अपरोक्षपना) इन दोनों धर्मों का अर्थात् भूत और वर्त्तमान के देश तथा काल का त्याग कर केवल 'देवदत्त इस अंशमात्र का ग्रहण करने पर वक्ता के वचन में कोई भी विरोध नहीं पड़ता। यहाँ पर 'वह' और 'यह इन दोनों अंशों का त्याग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करके सिर्फ देवदत्त के शरीर में लक्षणावृत्ति की गयी। यही है जहदजहल्लक्षणा।

हे सोम्य! 'तत्त्वमसि' इस वाक्य में जहल्लक्षणा नहीं हो सकती क्योंकि पूर्वकथनानुसार तत्पद का वाच्यार्थ चेतन सहित परोक्षादि धर्म वाला ईश्वर और त्वंपद का वाच्यार्थ उसी चेतन के सहित अपरोक्षादि धर्मवाला जीव होता है। जहल्लक्षणानुसार इन दोनों वाच्यार्थ का त्याग कर देने पर साथ-ही-साथ चेतन का भी त्याग हो जायगा और इससे कुछ भी अर्थ की सिद्धि न होगी। तथा इस महावाक्य में अजहल्लक्षणा भी नहीं हो सकती, क्योंकि जबकि परोक्ष और अपरोक्ष, एक और अनेक, सर्वज्ञ और अल्पज्ञ, मुक्त तथा बद्ध इत्यादि विरोधी धर्म वाच्यार्थ में ही हैं, तो भला अजहल्लक्षणानुसार और भी अधिक अर्थ के ग्रहण से किस अर्थ की सिद्धि होगी? अर्थात् श्रुति का जो 'तत्त्वमसि 'वह (ब्रह्म) तू (जीव) है, इस प्रकार का जीव और ईश्वर की एकता का प्रतिपादक वाक्य है, उसका विरोध तो रह ही जाता है, अतः—

'तत्त्वमस्यादिवाक्येषु लक्षणा भागलक्षणा'

'तत्त्वमसि आदि वाक्यों में भागलक्षणा होती है।' इस वचन के अनुसार 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य में भागत्याग (जहदजहद्) लक्षणा ही करने योग्य है। यहाँ पर जितने भी विरोधी धर्म हैं, वे माया और अविद्या के किये हुए हैं और उन विद्या तथा अविद्या की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, वे चेतन में अनादि कल्पित मिथ्या हैं। उनको मिथ्या समझ लेने पर अर्थात् तत्पद के वाच्यार्थ मायाभाग एवं त्वम्पद के वाच्यार्थ अविद्या भागका परित्याग कर देने पर सभी विरोधी धर्मों का अभाव हो जाता है, तब जीवत्व और ईश्वरत्व मिट कर दोनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का अधिष्ठान भूत एक शुद्धचेतन ही बच रहता है। अब उसे न कूटस्थ कह सकते न ब्रह्म। वह न तो जीवसाक्षी है और न ईश्वर साक्षी। उपाधियों के मिटते ही वह न तो किसी का अधिष्ठान रह गया और न आधार। हे शिष्य! वह अव्यक्त, अनिर्देश्य, अग्राह्य और अवाङ्मनसगोचर है। वही तू है, वही मैं हूँ और वही यह सारा संसार है। जैसे जब किसी को स्थाणु में चोर की भ्रान्ति हो जाती है, तो उससे कोई यथार्थ वक्ता पुरुष कहता है:—'योऽयं चोरः सः स्थाणुः' 'जो यह चोर है, वह तो स्थाणु है' उसी प्रकार श्रुतियाँ अपने भूले-भटके अज्ञानी पुत्रों के प्रति कह रही हैं:—

'इदं सर्वं यदयमात्मा' 'पुरुष एवेदं विश्वम्' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' 'आत्मैवेदं सर्वम्' 'वासुदेवः सर्वम्' 'नारायणः सर्वमिदं पुराणम्' इत्यादि।

'यह सब जो जगत् है, वह आत्मा है' 'यह सम्पूर्ण विश्व पुरुष ही है' 'निस्सन्देह यह सब ब्रह्म है' 'यह सब ब्रह्म ही है' 'यह सब आत्मा ही है' 'सब कुछ वासुदेव है' 'यह सम्पूर्ण जगत् पुरातन नारायण है' इत्यादि। और भी श्रुति भगवती कह रही है:—

"अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुः।"

"तदनन्तर [इस ब्रह्म को छोड़कर] जो अन्य देवताओं की उपासना करता है, तथा वह ब्रह्म दूसरा है और मैं दूसरा हूं, ऐसा जो जानता है, वह यथार्थ नहीं जानता, वह पशु के समान है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'न वेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'

"यदि यहाँ (उस ब्रह्मतत्त्व को) नहीं जाना, तो महती क्षति हुई।" जनक की सभा में श्रीयाज्ञवल्क्यजी गार्गी से कहते हैं:—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः
(श्रुतिः)

"हे गार्गि! जो इस अविनाशी ब्रह्म को बिना जाने ही इस मर्त्यलोक से जाता है, वह कृपण (दीन) है।" और:—

अथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः
(श्रुतिः)

"हे गार्गि! जो इस अविनाशी ब्रह्म को जानकर इस लोक से गमन करता है वह ब्राह्मण है।"

'स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म'
(बृ० ४।४।४५)

'वह यह महान् आत्मा अज, अजर, अमर, अमृत, अभय और ब्रह्म है।'

अतः हे सोम्य! इस तत्त्वको अच्छी प्रकार समझकरः—

"तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहं" (श्रुतिः)

"जो वह ब्रह्म है, वह मैं हूं, और जो मैं हूँ, वह ब्रह्म है" इस प्रकार दृढ़ निश्चय तथा अनुभव कर लेना चाहिये। 'तत् त्वम् असि' 'वह तू है' तथा 'त्वम् तत् असि' 'तू वह है' इस प्रकार परोक्ष ईश्वर से जीव की एकता और अपरोक्ष जीव से ईश्वर की एकता उपाधि त्यागपूर्वक एक चेतन दृष्टि से करनी चाहिये। इस तत् और त्वं पद का परस्पर समानाधिकरण्यभाव सम्बन्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, क्योंकि ये दोनों एक ही शुद्धचेतन रूप अधिकरण में कल्पित हैं, और इनका परस्पर विशेषण-विशेष्यभाव सम्बन्ध है. क्योंकि ये दोनों एक ही शुद्धचेतन के विशेषण हैं; इनसे ही शुद्धचेतन की पहिचान होती है, तथा ये दोनों ही एक ही शुद्धचेतन रूपी लक्ष्य के लक्षक हैं, अतः इनमें परस्पर लक्ष्य लक्षक भाव सम्बन्ध भी है, जैसे कहा गया है:—

सामानाधिकरण्यं च विशेषणविशेष्यता।
लक्ष्यलक्षणभावश्च पदार्थप्रत्यगात्मनाम् ॥

प्रश्न—महामते! सामवेद के 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य का मतलब तो आपकी कृपा से मैंने भलीभाँति सुना, परन्तु अब मैं शेष तीन वेदों के महावाक्यों का तात्पर्य भी सुनना चाहता हूँ।

हे शिष्य! सावधान होकर सुनो! मैं अथर्वणवेद के 'अयमात्मा ब्रह्म ऋग्वेद 'प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म' तथा यजुर्वेद के 'अहं ब्रह्मास्मि' इन महावाक्यों का भी रहस्य बतलाता हूं। 'अयमात्मा ब्रह्म इसमें अयम् आत्मा पद अपरोक्ष एवं अल्पज्ञादि धर्मोंवाला जीव का वाचक है और कूटस्थात्मा का लक्षक। तथा ब्रह्मपद परोक्ष एवं सर्वज्ञादि धर्मोंवाला ईश्वर का वाचक और शुद्धचेतन का लक्षक है। अब विचार करके देखिये तो वाच्य में ही भेद है, लक्ष्य में नहीं। जो कूटस्थात्मा है वही शुद्धचेतन है। यह मैं तत्त्वमसि की व्याख्या में कह आया हूं। इसी प्रकार 'प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इसमें भी प्रज्ञान शब्द अल्पज्ञादि धर्मोंवाला जीव का वाचक है और कूटस्थात्मा का लक्षक तथा ब्रह्म शब्द सर्वज्ञादि धर्मोंवाला ईश्वर का वाचक है और शुद्धचेतन का लक्षक। प्रज्ञान के साथ आनन्द पदसे श्रुति का यह तात्पर्य है कि प्रज्ञानस्वरूप जीव, आनन्दस्वरूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही है, न कि गुणवाला। यहाँ भी दोनों पदों का लक्ष्य एक ही है। फिर 'अहं ब्रह्मास्मि' में भी अहं पदका वाच्यार्थ अल्पज्ञादि धर्मवाला जीव होता है और लक्ष्यार्थ कूटस्थ आत्मा। तथा ब्रह्म पद का वाच्यार्थ सर्वज्ञादि धर्म वाला ईश्वर और लक्ष्य अर्थ शुद्धचेतन होता है एवं अस्मि पद दोनों की एकता करता है। वाच्यार्थों की एकता तो हो नहीं सकती, अतः यहाँ भी श्रुति का दोनों वाच्यार्थों को मायामय मिथ्या समझकर दोनों के लक्ष्यार्थों की एकता से ही तात्पर्य है। हे प्रिय! इस प्रकार सभी महावाक्य विशिष्ट चेतन के तो वाचक हैं और शुद्ध चेतन के लक्षक हैं, क्योंकि शुद्ध ब्रह्म किसी का भी वाच्य नहीं हो सकता।

हे भगवन्! उपहित और विशिष्ट में क्या अन्तर है?

हे सोम्य! उपहित कहते हैं उपाधिवाले को और विशेषण वाले को विशिष्ट। जो किसी वस्तु को अन्य हर एक वस्तु से पृथक करके जनावे, परंतु स्वयं उससे अलग ही रहे, वह उपाधि कहलाती है और वह लक्षित पदार्थ उस उपाधिवाला या उपहित कहलाता है, जैसे कान में रहनेवाला आकाश श्रोत्रपने की उपाधि है, क्योंकि वह श्रोत्र को अन्य इन्द्रियों से पृथक करके जनाता है, उसी की वजह से श्रोत्र शब्द को ग्रहण करता है, परंतु वह श्रोत्रेन्द्रिय से पृथक् ही है। और जो किसी वस्तु को अन्य हर एक वस्तु से अलग करके जनता भी है और उससे मिलकर उसमें अपने गुणों को भी जाहिर करता है, वह उस पदार्थ का विशेषण कहलाता है तथा वह पदार्थ विशिष्ट कहलाता है, जैसे 'नीलो घटः', 'नील घड़ा, इसमें नीलता घड़े का विशेषण है और घट विशिष्ट है, क्योंकि यहाँ नीलता इस घड़े को अन्य रंग के घड़ों और दूसरे सकल पदार्थों से भिन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करके जनाती है और स्वयं उस घड़े में प्रवेश भी किये हुए है।

पूर्वोक्त प्रकार से माया और अविद्या क्रमशः जीव और ईश्वर के विशेषण हैं, क्योंकि ये जीव और ईश्वर को शुद्ध चेतन से पृथक् करके जनाती हैं और अपने अल्पज्ञाता तथा सर्वज्ञतादि धर्मों का भी इनमें आरोपित की हुए हैं अतः जीव और ईश्वर क्रमशः अविद्या विशिष्ट तथा माया विशिष्ट कहलाते हैं। और एक ही चेतन अविद्या की अधिष्ठानता से कूटस्थात्मा और माया की अधिष्ठानता से परमात्मा कहलाता है। चूंकि एक ही शुद्ध चेतन इन दोनों उपाधियों के ही (अधिष्ठनता से) कारण क्रमशः आत्मा और परमात्मा—इस प्रकार दो नामोंवाली (भेद-सा) प्रतीत हो रहा है, अतः कूटस्थात्मा अविद्योपहित और परमात्मा मायोपहीत कहलाता है। इसी प्रकार असंग एवं निष्क्रिय कूटस्थात्मा अन्तःकरण उपहित. और कर्ता-भोक्ता जीव (चिदाभास) अन्तः करणविशिष्ट कहलाता है, क्योंकि यहाँ एक ही अन्तः करण शुद्धात्मा की तो उपाधि है और जीव का विशेषण है।

प्रश्न—हे भगवन्! जिस अज्ञान के कारण जीव अपने शुद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं आनंद स्वरूप को भूलकर जन्म-मरण, कर्ता-भोक्तादि का स्वप्न देखता हुआ अनादि काल से शोकित, श्रमित व्याकुल तथा उन्मत्त-सा हो रहा है, उस अज्ञान का क्या लक्षण है, तथा उसकी शक्तियाँ कौन है, और उसका नाश कैसे होता है?

उत्तर—हे महाप्राज्ञ! उस अज्ञान का महात्माओं ने 'अनादु पादानं ज्ञाननिवर्त्त्यम् अज्ञानम्' 'जो अनादि, जगत का उपादान का रण तथा ज्ञान से निवृत्त होने योग्य हो, वह अज्ञान है। इस प्रकार लक्षण वतलाया है। यद्यपि जीव और ईश्वर भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनादि हैं, परंतु ये सृष्टि का उपादान कारण नहीं हैं, इससे इनमें इस लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं होती। यद्यपि मिट्टी और तन्तु आदि, घट और पटादि के उपादान कारण हैं, तथापि ये अनादि नहीं है, अतः इनमें भी इसकी अतिव्याप्ति नहीं होती। तथा रज्जुकासर्प एवं सीपी की रजत भी ज्ञानद्वारा निवृत्ति हो जाती है, परंतु ये अनादि और जगत्सृष्टि के कारण नहीं हैं, इसलिए इनमें भी इसकी अतिव्याप्ति नहीं होती। अस्तु।

इस प्रकार के लक्षण वाले अज्ञान की आवरण, ज्ञान और विक्षेप—ये तीन शक्तियाँ होती हैं। इनमें 'नास्ति न प्रकाशते इति व्यवहारहेतुः आवरण शक्तिः, '[वस्तु] नहीं है और प्रतीत भी नहीं होती है ऐसे व्यवहार का हेतु आवरण शक्ति है।" तथा 'अस्ति प्रकाशते इति व्यवहारकारणं ज्ञानशक्तिः, '(वस्तु) है और प्रतीत भी होती है ऐसे व्यवहार का कारण ज्ञानशक्ति है।' एवं "आकाशादिप्रपञ्चोत्पत्ति हेतुः विक्षेपशक्तिः" "आकाशादि प्रपंच—उत्पत्ति का जो कारण है, वही विक्षेपशक्ति कहलाती है।" यही विक्षेप शक्ति अद्वितीय ब्रह्म में सूक्ष्म जगत् से लेकर स्थूल जगत् पर्यन्त समस्त जगत् की रचना करती है जैसे— "विक्षेपशक्ति लिङ्गादि ब्रह्माण्डान्त जगत् सृजेत्।" इस प्रकार ईश्वर विक्षेप शक्ति से जगत्सर्जन और ज्ञानशक्ति से जीवों के शुभाशुभ कर्मों का ज्ञान तथा आवरण शक्ति से अपने वास्तविकता को ढककर जीवों को मोहित कर रहा है। भगवान् ने—

"नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।"

(गीता)

"मैं अपनी योगमाया से आच्छादित हुआ सबके लिए प्रकाशित नहीं होता।" इससे अपनी आवरणशक्ति का प्रतिपादन किया है। तथा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"महात्मनस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।"
"भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वाभूतादि मव्ययम्"

"परन्तु हे पार्थ ! दैवी प्रकृति का आश्रय लेने वाले महात्मा पुरुष भूतों को आदि और अविनाशी जानकर मुझे अनन्यभाव से भजते हैं।" इससे ज्ञानशक्ति का कथन किया है। और

"मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।"

"प्रकृति मेरी अध्यक्षता से चराचर को रचती है।" इससे विक्षेप शक्तिका वर्णन किया है। अस्तु—

अज्ञान त्रिगुणात्मक है; वह अपने तमोगुण की वृद्धि से आवरण, रजोगुण के उत्कर्ष से सृष्टि (वेक्षेप) और सतोगुण के विस्तार से ज्ञान पैदा करता है। इस अज्ञान के वश में होकर जीव के अंतःकरण में जब ऐसी बुद्धि होती है कि "शरीर से भिन्न न तो कोई अविकारी आत्मा है और न उसका भान ही होता है और इस संसार से पृथक् न तो कोई ब्रह्म नाम की वस्तु है और न वह प्रतीत हो रहे हैं" तब यही आवरण नाम की शक्ति कही जाती है। जब तो पुरुष तत्त्ववेत्ता महात्मा के मुखारविंद से "एषोन्तर्ज्योतिः पुरुषः" यह जो बुद्धि में स्थित ज्योति (चैतन्यता) है वही आत्मा पुरुष है। तथा "सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म" सत्य ज्ञान और अनंत ब्रह्म है इत्यादि इस प्रकार के श्रुति के अवांतर वाक्यों के द्वारा त्वं (जीव) और तत् (ईश्वर) पद के असली स्वरूप के अस्तित्व को जान जाता है, तब तो अज्ञान की "आत्मा या ब्रह्म नहीं है" इस प्रथम आवरण शक्ति का नाश हो जाता है और जब "तत्त्वमसि वह तू है" इस प्रकार का महावाक्य सुनता है तो "आत्मा या ब्रह्म की प्रतीति नहीं होती" इस दूसरी आवरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शक्ति का भी नाश होकर ऐसा बोध होता है कि ये शरीर और संसार मिथ्या हैं और इनका अधिष्ठान और प्रकाशक शुद्ध सच्चिदानंद नित्यमुक्त परमात्मा मैं ही हूँ। गीता में त्वं पद वाचक श्लोक यह है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥
(गीता ६।२९)

"ज्ञानयोग से युक्त अंतःकरणवाला पुरुष सर्वत्र सम देखता हुआ अपने आत्मा को सम्पूर्ण भूतप्राणियों में और सम्पूर्ण भूतप्राणियों को अपने आत्मा में (कल्पित) देखता है।" तथा तत् पद (ईश्वर) के विषय में यह है :—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
(६।३०)

"जो अधिकारी पुरुष मुझ परमेश्वर को (तरङ्ग, बुदबुदादि में जल को भाँति) संसार में सर्वत्र देखता है और सम्पूर्ण जगत् को (रस्सी में सर्प की तरह) मुझ ब्रह्म में देखता है—अनुभव करता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं हूँ और न वह मेरे लिए अदृश्य है।" असि पद (जीव और ईश्वर की एकता) के विषय में यह है—

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥
(६।३१)

"जो सम्पूर्ण भूतप्राणियों में स्थित मुझ (सर्वात्मा) को एकत्व भाव से अर्थात् "वह ब्रह्म मैं हूँ" इस प्रकार भजता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह योगी सब प्रकार से वर्तता हुआ भी मुक्त ब्रह्म में ही वर्तता है। कारण, उसकी दृष्टि में एक ब्रह्मात्मा के अतिरिक्त संसार की सत्ता रह ही नहीं गयी रहती है।

शिष्य बोला:—

अह ब्रह्म हूँ ज्ञान यह, किसमें होत उदोत।
गुरुवर! शुद्ध कूटस्थ का, या आभासहिं होत॥१२॥

"गुरुवर! अहं ब्रह्मास्मि, यह ज्ञान किसमें प्रकाशित होता है? शुद्ध कूटस्थ को अथवा आभास को?"

तात्पर्य—कूटस्थ तो शुद्ध मुक्त, निर्विकार एवं ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही है, अतः उसमें 'मैं ब्रह्म हूँ, यह ज्ञान बन नहीं सकता और चिदाभास (अंतःकरण प्रतिबिम्बित चेतन) तो मिथ्या है, इसलिए वह सत्स्वरूप ब्रह्म नहीं हो सकता, तो फिर ऐसा ज्ञान किसको होता है?

गुरु बोले –

अहं शब्द से शुद्ध में, करत जीव अभिमान।
शिष्य! शुद्ध अरु ब्रह्म में, नित्य एकता जान॥१३॥

"हे शिष्य! जीव जो चिदाभास है, वह अहं शब्द से शुद्ध चेतन कूटस्थ आत्मा में अभिमान करता है कि 'मैं अंतःकरण का साक्षी शुद्धात्मा हूं, फिर उस शुद्ध कूटस्थात्मा से ब्रह्म की नित्य एकता है, ऐसा जानो।"

इस प्रकार एक ही काल में बुद्धि वृत्ति, अहं शब्द से आत्माकार होकर ब्रह्मास्मि शब्दों से झट ब्रह्माकार हो जाती है, उसे आत्माकार होकर पुनः ब्रह्माकार होते देर नहीं लगती। अहं शब्द से चिदाभास अंतःकरण के सहित अपने को बाधकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थात् अविद्यामय मिथ्या जानकर सत्स्वरूप कूटस्थ को अपना असली रूप मानता है, तब फिर अपने कूटस्थरूप से ब्रह्म की मुख्य एकता का भान करता है, अतः चिदाभास का ब्रह्म से बाधसमानाधिकरण सम्बन्ध है और कूटस्थ से तो मुख्य समानाधिकरण संबंध वैसे ही है, जैसे मठ में रखे हुए घटाकाशका महाकाश से बाधसमानाधिकरण संबंध होता है और मठाकाश का उससे मुख्य समानाधिकरण। इसको स्पष्ट समझने के लिए विद्वानों ने महाकाश, मेघाकाश, घटाकाश और जलाकाश, इन चार आकाशों के दृष्टांत दिये हैं। इनमें से महाकाश तो वह है जो ब्रह्माण्ड के बाहर-भीतर सर्वत्र असंगरूप से व्याप्त है और मेघ में व्याप्त होकर उसे अवकाश देनेवाला आकाश है, वह; तथा जो उस आकाश का मेघ में प्रतिबिम्ब एवं मेघ, ये तीनों मिलकर मेघाकाश कहलाता है। और जल से परिपूर्ण घट में व्याप्त होकर उस घट तथा जल को जिसने आवकाश दिया है, वह घटाकाश एवं घटाकाश के सहित जल का प्रतिबिम्बित आकाश जलाकाश कहा जाता है। यहाँ महाकाश के समान शुद्ध ब्रह्म, मेघाकाश के सदृश्य ईश्वर, घटाकाश की भाँति कूटस्थ और जलाकाश की तरह चिदाभास है। हे सोम्य ! माया को तो मेघ मानना चाहिए, जो शुद्ध चेतनरूपी आकाश में अपने आप दीख पड़ने लगती है। तथा शरीर को घट और इसमें रहनेवाली अविद्यायुक्त बुद्धि ही जल के स्थान पर है। अब विचारपूर्वक देखो तो जिस प्रकार जल एवं मेघ के सारे विकार जलाकाश तथा मेघाकाश में ही प्रतीत होते हैं; घटाकाश और महाकाश तो शुद्ध तथा निर्लेप हैं। वैसे ही अविद्यायुक्त बुद्धि के कर्ता-भोक्तापनादि तथा माया के सर्जन, पालनादि सारे धर्म क्रमशः चिदाभास और ईश्वर में ही हैं; कूटस्थ और ब्रह्म तो शुद्ध तथा निर्विकार हैं। फिर जिस प्रकार जलाकाश का महा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काश से बाध समानाधि करण सम्बन्ध है, क्योंकि जब जलरूप उपाधि का त्याग किया जायगा, तब उसकी घटाकाश से एकता होकर महाकाशसे एकता, होगी और घटकाशसे तो नित्य एकता होने से मुख्य समानाधिकरण संबंध है। वैसे ही चिदाभास का ब्रह्म से बाधसमानाधिकरण सम्बन्ध और कूटस्थ से मुख्य समानाधिकरण सम्बन्ध है। क्योंकि माया का अधिष्ठान शुद्ध ब्रह्म है और मायाविशिष्ट ईश्वर में अज्ञानरूप आवरण नहीं होता, अतः ईश्वर का ब्रह्म से नित्य—निरन्तर मुख्य समानाधिकरण सम्बन्ध (एकता) है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पहले-पहल माया में पड़ता है और वह ईश्वर कहलाता है। फिर उस ईश्वर का प्रतिबिम्ब अविद्या में वैसे ही पड़ता है, जैसे जल में पड़े हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब पुनः किसी स्वच्छ दर्पण में पड़े, वही जीव कहलाता है अतः जब ब्रह्मज्ञान द्वारा अविद्या नष्ट होती है तो जीव प्रथम अपने बिम्बभूत ईश्वर से वैसे ही एकता करता है, जैसे दर्पण के नष्ट होते ही उसका प्रतिबिम्ब जल प्रतिबिम्बित सूर्य से एकता कर लेता है। इसके बाद उसकी एकता ब्रह्म से वैसे ही हो जाती है, जैसे जलप्रतिबिम्बित सूर्य की वास्तविक सूर्य से। इस प्रकार जीव प्रथम मायाविशिष्ट ईश्वर को ही प्राप्त होता है तब फिर शुद्ध ब्रह्म को। यह सारा ब्रह्माण्ड ईश्वरमय होने से ईश्वर का स्वरूप है, अतः ज्ञानवान् जब शरीर छोड़ता है तो प्रथम ईश्वर को ही प्राप्त होता है, तब पुनः ब्रह्म को। इस विषय में यह दृष्टान्त है—जैसे मठ में रखा हुआ घट के नाश होने पर उस घटाकाश का प्रथम मठाकाश से ही एकता होगी, तब फिर महाकाश से। यहाँ पर जैसे घटाकाश का महाकाश से बाधसमानाधिकरण सम्बन्ध और मठाकाश का उससे मुख्य समानाधिकरण सम्बन्ध है वैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही जीव का ब्रह्म से बाधसमानाधिकरण सम्बन्ध तथा ईश्वर का उससे मुख्य समानाधिकरण सम्बन्ध है।

शंका—हे प्रभो! आपने यहाँ पर दो प्रकार के सिद्धान्त कहे। इनमें से कौन यथार्थ है? यह मुझ सेवक की सन्देह-निवृत्ति के लिए कहें?

समाधान—हे प्रिय! दोनों ही सिद्धान्त यथार्थ हैं, क्योंकि दोनों ही एक ही अद्वैत ब्रह्म के प्रतिपादक हैं इन दोनों से ही अद्वितीय ब्रह्म को अभेद भाव से प्राप्ति होकर दुःख की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष प्राप्त हो जाता है। शास्त्र में कहा भी है:—

यया यया भवेत्पुंसा व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि ।
सा सैव प्रक्रियेह स्यात्साध्वी सा चानवस्थिता ॥
(वार्तिकाचार्य)

"जिस प्रक्रिया से जिस प्रकार प्रत्यक् आत्मा में व्युत्पत्ति (तात्पर्य) हो, वही प्रक्रिया इस वेदान्त शास्त्र में साध्वी (श्रेष्ठ) मानी गयी है और अधिकारी पुरुष को वही ग्राह्य होना चाहिये।"

सच बात तो यह है कि माया और अविद्या दोनों का ही अस्तित्व नहीं है, अपितु ये मृगजल के समान मिथ्या ही हैं। और जब कि ये मिथ्या ही हैं तो इनसे भेद तथा परिच्छेद से रहित सद्रूप अद्वितीय ब्रह्म प्रतिबिम्बित तथा परिच्छिन्न कैसे हो सकता है? तथा जब ऐसी बात है तब ईश्वर और जीव कैसे बन सकते हैं? अतः अवच्छेद, आभास आदि की जितनी भी प्रक्रियाएँ हैं, वे सब एक अद्वैत ब्रह्म के बोध कराने के ही लिए हैं। जैसे नदी पार कर लेने पर नौका निरर्थक हो जाती है अथवा जैसे काँटा से काँटा निकालकर फिर उसे भी तोड़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर फेंक दिया जाता है वैसे ही जब प्रक्रिया के द्वारा ब्रह्मात्मा का बोध होकर प्रपंच का मिथ्यात्व सिद्ध हो जाता है, तब वह प्रक्रिया भी निरर्थक एवं निवृत्त हो जाती है।

चौथा परिच्छेद

शुद्ध ब्रह्म भेद तथा परिच्छेद से रहित है

शिष्य बोला—

स्वामिन्! आपने पूर्वप्रकरण में जो कुछ कहा, वह सत्य है। आपकी कृपा से मैंने समझा कि एक ही अद्वितीय ब्रह्म में माया, अविद्या, ईश्वर, जीव तथा जगत् ये वास्तव में नहीं हैं, प्रत्युत ये साँप में चाँदी की तरह उसमें झूठमूठ ही प्रतीत हो रहे हैं परन्तु आपने वहाँ पर यह भी कहा था कि शुद्ध ब्रह्म भेद तथा परिच्छेद से रहित है, सो हे नारायण! मैं यह जानना चाहता हूँ कि भेद और परिच्छेद क्या हैं और शुद्ध ब्रह्म उनसे रहित कैसे है?

महात्मा बोले:—

स्वगत स्वजातिय भेद नहिं, नहीं विजातिय भेद।
शुद्ध ब्रह्म में वस्तु नहिं, देश काल परिच्छेद॥ १॥

"शुद्ध ब्रह्म में स्वगत, स्वजातीय तथा विजातीय रूप भेद नहीं है और न देश, काल तथा वस्तुरूप परिच्छेद ही है।"

हे शिष्य! भेद तीन प्रकार का होता है—स्वगत, स्वजातीय और विजातीय। जो भेद अपने ही अन्दर हो, वह स्वगत भेद कहलाता है, जैसे एक ही वटवृक्ष में डाली, पत्ते, फूल-फलादि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूप भेद रहता है। तथा जो भेद अपनी जाति के अन्तर्गत हो वह स्वजातीय भेद कहा जाता है, जैसे वटवृक्ष का अपनी जाति पीपल, आम आदि से भेद है। और जो भेद अपनी जाति से भिन्न अन्य जातियों से होता है, वह विजातीय भेद कहलाता है, जैसे वटवृक्ष का मनुष्य, पशु-पक्षी आदिसे भेद है।

'अकायमव्रणमस्नाविरम्।'

"वह ब्रह्म शरीर, व्रण (घाव) तथा स्नायु से रहित है, इस श्रुति के अनुसार ब्रह्म अङ्ग-प्रत्यङ्गों से रहित निरवयव है, अतः वह स्वगत भेद से रहित है तथा "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" एक ही अद्वितीय ब्रह्म है इस श्रुति से उसके एक ही होने से उसकी जाति का दूसरा कोई नहीं है, जीव चेतन और ईश्वर चेतन तो अविद्या और माया के किये हुए उसी चेतन ब्रह्म के विवर्त हैं तथा "चेतन चेतनानाम्" इस श्रुति से वही ब्रह्म एकमात्र समस्त चेतनों का चेतन है, अतः उसमें स्वजातीय भेद नहीं है। और 'नेह नानास्ति किञ्चन' यह नानात्व [जगत्] कुछ नहीं है इस श्रुति से एक ब्रह्म के अतिरिक्त नानात्व प्रपंच की सत्ता ही नहीं है, इसलिए ब्रह्म विजातीय भेद से भी रहित है।

परिच्छेद भी देश, काल और वस्तु, इस भेद से तीन प्रकार का होता है। जो वस्तु किसी देश में हो और किसी देश में न हो, वह देश परिच्छेदवाली कहलाती है, तथा जो किसी काल में रहे और किसी काल में न रहे, वह काल परिच्छेदवाली और जो सब वस्तुओं में न रहे, वह वस्तु परिच्छेद वाली कही जाती है।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" सत्य, ज्ञान और अनंत ब्रह्म है इस श्रुति के अनुसार ब्रह्म अनंत होने से देशपरिच्छेद से रहित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, क्योंकि उसका किसी भी देश से अंत नहीं है; तथा सत्य होने से वह कालपरिच्छेद से रहित है, क्योंकि "कालत्रयेऽपि तिष्ठतीति सत्" जो तीनों कालों में रहता है, वह सत्य है और वह ज्ञानस्वरूप होने से वस्तुपरिच्छेद वाला भी नहीं है क्योंकि उसका ज्ञान किसी वस्तु से आच्छादित नहीं हो सकता। और भी शास्त्र में कहा है :—

न व्यापित्वाद्देशतोऽन्तो नित्यत्वान्नापि कालतः।
न वस्तुतोऽपि सर्वात्म्या दानन्त्यं ब्रह्मणि त्रिधा॥

"व्यापक होने से उस ब्रह्म का देश से अंत नहीं है। नित्य होने से काल से भी अन्त नहीं है और सर्वात्मा (सर्वाधिष्ठान) होने से उसका वस्तु से भी अन्त नहीं है। इस प्रकार ब्रह्म में तीन प्रकार की अनन्तता है।"

भगवन्! वह भेद तथा परिच्छेद से रहित शुद्ध ब्रह्म किस प्रमाण से जाना जाता है?

वत्स! वह शुद्ध ब्रह्म किसी भी प्रमाण का विषय नहीं है। भगवान कहते हैं —

"न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥"
(गीता)

"उसे न तो सूर्य प्रकाशित कर सकता, न चन्द्रमा, और न पावक ही। तथा जहाँ जाकर (पुरुष) नहीं लौटते हैं, वही मेरा परम धाम है।" यहाँ 'राहोः शिरः' 'राहु का शिर' की तरह ब्रह्म के स्वरूप को ही ब्रह्म का धाम समझना चाहिए और उसकी यथार्थ अनुभव रूप प्राप्ति को ही पहुँचना जानना चाहिये, क्योंकि जहाँ जाना होगा, वहाँ से लौटना भी अनिवार्य होगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और यहाँ । 'न निवर्तन्ते' "नहीं लौटते हैं" ऐसा कहा गया है। और इस भेद तथा परिच्छेद से रहित ब्रह्म का निजात्मरूप से अनुभव कर लेने पर तो अपने को अखिल ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत पायेगा, तब वह किस रिक्त देश में जाये और आयेगा। अस्तु। जब वहाँ सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि की पहुँच नहीं है तो इनके सहारे देखने, मनन करने तथा बोलने वाली आँख, मन और वाणी, ये इन्द्रियाँ वहाँ कैसे जा सकती हैं। इसी से तो श्रुति भगवती कहती है:—

"नैव वाचा न मनसा शक्यं प्राप्तुं न चक्षुषा"

"वह ब्रह्म न वाणी से, न मन से और न नेत्र से ही प्राप्त करने योग्य है।"

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"

"जहाँ से वाणियाँ मन के सहित अप्राप्त होकर लौट आती हैं।"

महामते! जब कि वह ब्रह्म मन, वाणी आदि का अविषय है तो श्रुतियाँ 'अन्न ब्रह्म इति उपासीत' 'प्राणं ब्रह्म इति उपासीत' 'अन्न ब्रह्म है, ऐसी उपासना करे' 'प्राण ब्रह्म है, ऐसी उपासना करे, इत्यादि उपासनाएँ किस लिए बतलाती हैं?

हे शिष्य! पूर्वोक्त उपासनाएँ शुद्ध ब्रह्म की नहीं हैं, अपितु वे सोपाधिक ब्रह्म की हैं। पहले सोपाधिक ब्रह्म की ही उपासना की जाती है जब सोपाधिक ब्रह्म की उपासना से बुद्धि सूक्ष्म तथा शुद्ध हो जाती है, तब शुद्ध निरुपाधिक ब्रह्म का ज्ञान होता है और उस ज्ञान के द्वारा जब आवरण नष्ट हो जाता है, तब वह ब्रह्म अपने-आप प्रकाशित होता है, अतः सारी उपासनाएँ और सारे प्रमाण उस ब्रह्म के आवरण नष्ट करने के ही लिए हैं, न कि उसको विषय करने के लिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे जब किसी को अरुन्धती का तारा दिखलाना होता है, तो उसकी दृष्टि को वहाँ तक ले जाने के लिए प्रथम उसे आकाश के ताराओ को दिखलाया जाता है; तब फिर सप्तर्षि मण्डल, फिर उस मण्डल में भी जो चारपाई की तरह चार हैं उनको छोड़ कर शेष तीन को दिखलाते हुए, उनके मध्य के एक को दिखला कर कहा जाता है कि उसके समीप टिमटिमाता हुआ जो एक नन्हा-सा तारा है वही अरुन्धती का तारा है, तब वह पुरुष उसे देखकर प्रसन्न हो जाता है और बोल उठता है:—"आहो! यही अरुन्धतो का तारा है।" यदि उस व्यक्ति को इस युक्ति से नहीं दिखलाया जाता तो वह सहसा उस अरुन्धती के तारे को नहीं देख सकता। उसी प्रकार श्रुति भगवती अपने प्रिय जिज्ञासु पुत्रों पर दया करके पहले सोपाधिक ब्रह्म को दिखला कर, तब फिर निरुपाधिक तत्त्व का अनुभव कराती है। ऐसे ही तैत्तिरीय उपनिषद् में वरुण ने अपने पुत्र भृगु के प्रति अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच कोशों को पक्ष, शिर और पुच्छादि से युक्त पक्षी के रूप में वर्णन करते तथा इनको क्रमशः ब्रह्म बतलाते हुए अन्त में सर्वाधार आनन्द को ही वास्तविक तत्त्व ब्रह्म बतलाया है। तथा छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है कि जब सुरपति इन्द्र और दैत्यपति बलि ने प्रजापति ब्रह्मा के पास जाकर आत्मा के विषय में पूछा तो प्रजापति ने उनसे पहिले बत्तीस-बत्तीस वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करा कर जल में उनकी शरीर छाया को दिखलायी और कहा कि यही आत्मा है। दैत्यराज विरोचन स्थूल बुद्धि होने के कारण स्थूल शरीर के समान ही वस्त्राभूषणों से सुसज्जित छाया को देख स्थूल शरीर को ही आत्मा जानकर प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को लौट गया और वहाँ जाकर उसने निखिल दैत्यों को स्थूल शरीर का ही आत्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूप से उपदेश दिया। परन्तु सात्विक बुद्धिवाला इन्द्र ने प्रजापति से बार-बार पूछा और उनके बतलाये हुए उपदेशों को अपनी सूक्ष्म एवं कुशाग्र बुद्धि से बार-बार विचार किया, अन्ततोगत्वा उसने कुल एक सौ एक वर्ष ब्रह्मचर्य पालन कर निरावरण अखण्ड ब्रह्म का बोध प्राप्त किया।

प्रश्न—हे प्रभो! ब्रह्म की अखण्डता क्या है?

उत्तर—हे सोम्य! अखण्ड का लक्षण महात्माओं ने इस प्रकार किया है:—

'विजातीयस्वजातीयस्वगतभेदशून्यत्वम् अखण्डत्वम्'

"विजातीय, स्वजातीय और स्वगत भेद से रहित होना ही अखण्डत्व है।"

अथवा:—

"त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वम् अखण्डत्वम्"

"देश, काल और वस्तु रूप तीन परिच्छेद से रहितपना ही अखण्डत्व है।"

हे शिष्य! जब यह अखण्ड ब्रह्म तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के विचार द्वारा बुद्धिवृत्तिमें ज्ञानरूपसे आरूढ़ (स्थित) हो जाता है तो मूला ज्ञान के सहित सकल दुःख द्वन्द्वों का नाश करके फिर स्वयं भी वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे तृण समूह में फेंका अंगार उस तृण समूह को जला कर फिर अपने-आप बुझ जाता है। अथवा जैसे अन्न के पौधों पर पड़ा हुआ तुषार उस फसल को नष्ट करके सूर्योदय होते ही स्वयं भी नष्ट हो जाता है।

शंका—हे नाथ! वह वृत्ति में आरूढ़ हुआ विशेष चेतन ही अज्ञान का नाश क्यों करता है? सर्वव्यापी सामान्य चेतन उसका नाश क्यों नहीं करता?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधान—हे प्रिय ! समान सत्ता के ही पदार्थ आपस में साधक तथा बाधक हुआ करते हैं, विषम सत्तावाले नहीं।

प्रश्न—सत्ता कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर—तीन प्रकार की।

प्रश्न—कौन-कौन ?

उत्तर—पारमार्थिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता और प्रतिभासिक सत्ता। इनमें 'कालत्रयेऽप्यबाधितः पारमार्थिकः' 'जो तीन कालमें अबाधित (अमिथ्या) हो, वह पदार्थ पारमार्थिक सत्तावाला है' ऐसा एक सामान्य चेतन (ब्रह्म) ही है। तथा 'आगन्तुकदोषजन्यः प्रातीतिकः' 'जो आगन्तुक (आकस्मिक) दोष से उत्पन्न है वह प्रतिभासिक कहलाता है' ऐसी वस्तु रस्सी में सर्प सीपो में चाँदी या स्वप्नसृष्टि होती है। और प्रातीतिकभिन्नव्यावहारिकः' 'प्रातीतिक (प्रातिभासिक) से भिन्न पदार्थ व्यावहारिक है' ऐसा तो ईश्वररचित पंचभूतमय जगत् ही है।

इन तीन पदार्थों में से जो बिना ब्रह्मज्ञान के ही नष्ट हो जाय, ऐसा पदार्थ तो जीव रचित प्रातिभासिक है तथा जिसका ब्रह्मज्ञान के बिना नाश न हो, ऐसा ईश्वररचित संसार ही (व्यावहारिक) है और जिसका कभी भी नाश न हो ऐसा ब्रह्म ही पारमार्थिक है। अस्तु—

जैसे प्रातिभासिक स्वप्न में किसी राजा को शत्रु पकड़ कर लिये जाता हो अथवा उसे खूब भूख लगी हो तो उसके व्यावहारिक सेना, कोष-खजानादि के रहते हुए भी उसको वह शत्रु जनित विपत्ति और क्षुधा दूर नहीं हो सकती। और कोई जन्मान्ध पुरुष स्वप्न में आँखवाला या दरिद्र चक्रवर्ती सम्राट हो जाय तो वह व्यावहारिक अन्धत्व अथवा दरिद्रता का दुःख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूर नहीं हो सकता। उसी प्रकार व्यावहारिक बन्धन जो अज्ञान सहित जन्म-मरणादि द्वन्द्वों से युक्त प्रपंच है, उसकी निवृत्ति, विषम सत्तावाला जो पारमार्थिक ब्रह्म है, उससे नहीं होती, प्रत्युत जब वही सामान्य चेतन (ब्रह्म) ब्रह्म विद्या रूप से अन्तःकरण की वृत्ति में आरूढ़ होकर व्यावहारिक श्रेणी में आ जाता है, तो मूलाविद्या (अज्ञान) का नाश वैसे ही कर डालता है, जैसे लकड़ियों में नित्य-निरन्तर निराकार रूप से रहनेवाली अग्नि लकड़ियों के परस्पर रगड़ से साकार रूपसे प्रकट होकर उन्हीं लकड़ियों को जला डालती है। जैसे पंचतत्त्व-वाले पदार्थों में एक अग्नि भी रहता और उनका धारण-पोषण करता है, क्योंकि विना अग्नि के सिर्फ शेष चार तत्त्वों से कोई पदार्थ बन हो नहीं सकता। वैसे ही परमात्मा अपने अस्ति, भाति और प्रिय रूप से अज्ञान तथा अज्ञानजनित सकल पदार्थों को धारण कर रहा है। सम्पूर्ण पदार्थ शशशृङ्ग की तरह मिथ्या होते हुए भी उसीकी सत्ता से सत्य-सा प्रतीत हो रहे हैं, तथा जड़ होते हुए भी उसीकी चेतनता से चेतन-सा प्रतीत होते हैं, अथवा इनकी प्रतीति हो रही है। और आनन्द वस्तु तो एक वह ब्रह्म ही है फिर इन पदार्थों में आनन्द क्यों पाया जाता? सर्पणी में भी सर्प को एवं विष्ठा में भी शूकर-कूकर को आनन्द मिलता है, यह क्यों? इसलिए कि इन सर्व पदार्थों में वह आनन्द स्वरूप परमात्मा रहता है। यह सब आनन्द उसीका है। तथा स्वरूप को आच्छादित करनेवाला अज्ञान 'है' (अस्ति), अज्ञान 'प्रतीत होता है' (भाति) और अज्ञान-अज्ञानियों को आनन्द देने से 'प्रिय है' और शून्य भी शून्यवादियों को प्रिय होता है। तथा यह घट है (अस्ति), घट की प्रतीति (भाति) होती है और घट प्रिय है, क्योंकि वह जल पिलाता है इत्यादि। इस प्रकार अज्ञान, शून्य तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घटादि सभी पदार्थों में अस्ति, भाति एवं प्रिय रूप ब्रह्म की व्यापकता पाई जाती है। कहा भी है:—

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पंचकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥

"जगत् की हरएक वस्तुओं में अस्ति, भाति और प्रिय— ये पाँच अंश पाये जाते हैं, इनमें आदि के तीन अंश (अस्ति, भाति, प्रिय) तो ब्रह्मरूप है और बाद के दो (नाम-रूप) जगत् रूप।"

इनमें से नामरूप तो व्यभिचारी होने से मिथ्या हैं, जैसे जो नामरूप घट में हैं वे पट में नहीं हैं और जो पट के हैं, वे घट के नहीं है। इसी प्रकार हरएक पदार्थों में समझ लेना चाहिये। परन्तु अस्ति, भाति और प्रिय तो सर्वत्र और सब अवस्थाओं में पाये जाते हैं, अतः वे सत्य हैं, जैसे भ्रांति काल में:—यह चाँदी "है" (अस्ति), चाँदी "प्रतीत होती है" (भाति) और यह चाँदी "प्रिय" है। तथा अभ्रान्ति-कालमें यह सीपी है (अस्ति), सीपी 'प्रतीत होती है' (भाति) और सीपी 'प्रिय' है।

हे शिष्य ! वस्तुतः तीन सत्ताएँ नहीं है, अपितु जिज्ञासुओं के बोध के लिए ही ये तीन सत्ताएँ कही गयी हैं। बोध काल में तो क्या व्यवहारिक और क्या प्रातिभासिक, सभी पदार्थ कल्पित जान पड़ते हैं, तथा उन कल्पित पदार्थों का अधिष्ठान एक अद्वितीय ब्रह्म ही है। कल्पित पदार्थ अपने अधिष्ठान ब्रह्म से वैसे ही भिन्न नहीं हैं जैसे कल्पित तरंग एक जलरूप ही तथा कल्पित भूषण एक स्वर्ग रूप ही होते हैं। इस रीति से एक सच्चिदानन्दघनब्रह्म ही अपने-आप में स्थित है, उसमें यह नानात्व जगत् नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार गुरुमुख से श्रवण कर शिष्य की चित्तवृत्ति अन्तर्मुख हो गयी और वह मौन धारण कर अपने आत्म-स्वरूप में स्थित हो असीम आनन्द का अनुभव करने लगा और उसके मुखारविन्द से तेज झलकने लगा। पुनः कुछ काल के बाद जब उसकी चित्तवृत्ति बहिर्मुख हुई तो वह अपने को कृतकृत्य समझता तथा मुसुकराया हुआ प्रसन्नचित्त एवं गद्गद् वाणी से बोला—भगवन्,कृपाल गुरो! आपको कोटिशः साधु-वाद है। आज मेरा सम्पूर्ण दुःख छूट गया। आपने मुझे आज आनन्दसागर का अनुभव कराया है। त्रैलोक्य में ऐसी वस्तु नहीं, जिसे देखकर इस उपकार के बदले मैं उऋण होऊँ, अतः आपके चरणकमलों में मेरा केवल बार-बार प्रणाम ही है।

प्रभो! आपकी अमृतमय वाणी सुनकर मेरा मन तृप्त नहीं होता, अतः आप पुनरपि ब्रह्म तत्त्व का उपदेश करें। इस प्रकार शिष्य के वचन को श्रवण कर महात्मा ने मौन धारण कर लिया। तब पुनः शिष्य ने कहा—भगवन्! वह ब्रह्म कैसा है? फिर भी महात्मा नहीं बोले। जब शिष्य ने बार-बार यही प्रश्न किया तब महात्मा बोले—अरे! मैं बार-बार तेरे प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ, तेरी समझ में नहीं आता? वह ब्रह्म वाणी का विषय नहीं कि कथन किया जाय। वह सिर्फ़ अनुभव गम्य है। वहाँ पहुँचते ही मन अमन हो जाता है और जब मन ही नहीं रहा तो वाणी कहाँ रह जाती है? अतएव तेरे प्रश्न का उत्तर मूक होना ही है। जैसे जब लवण की पुतली समुद्र की थाह लेने गयी तब वहाँ जाकर उसमें घुल-मिल कर पानी हो गयी, तो फिर आकर कौन कहे कि समुद्र कितना गहरा है? वैसे ही वहाँ उस ब्रह्म में जाकर मन और वाणी लय हो जाते हैं, फिर प्रतिपादन करने की सामर्थ्य ही नहीं रह जाती—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गई लवन की पुतली, थाह सिन्धु का लौन।
आपुहि गलि पानी भई, आइ बतावै कौन॥

पांचवाँ परिच्छेद

ज्ञान की सप्त भूमिका

शिष्य बोलाः—

कब लगि जगका भान, यत्न शेष कब होत है?
गुरुवर ज्ञाननिधान, जीवन् मुक्ति विदेह क्या? ॥ १ ॥

"हे ज्ञान के निधान गुरुवर! संसार की प्रतिति कब तक बनी रहती है? पुरुषार्थ का अन्त कब हो जाता है? और जीवन मुक्ति एवं विदेह मुक्ति क्या है?"

तात्पर्य—संसार की सत्यता की प्रतीति कब तक बनी रहती है? तथा किस अवस्था में साधक पुरुष का पुरुषार्थ छूट जाता है? और जीवनमुक्ति तथा विदेहमुक्ति किसे कहते हैं?

श्रीगुरु बोलेः—

कहौं भूमिका सात, सुनहु शिष्य अब ज्ञान की।
जाते हो सुख प्राप्त, मिटहिं सकल संशय तब॥ २ ॥

"हे शिष्य सुनो! अब मैं ज्ञान की सात भूमिका कहता हूँ, जिसके श्रवण से सुख प्राप्त होगा और तुम्हारे सम्पूर्ण संशय नष्ट हो जायेंगे।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. Public Domain. Digitization by eGangotri Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्यमाहिं मम बुद्धि नहीं, मैं मूरख मतिहीन।
सन्तन अरु सत शास्त्र की, सङ्गति नः मैं कीन ॥३॥
नाम 'शुभेच्छा' भूमिका, प्रथम ज्ञान की आहि।
श्रवण करन सत शास्त्र का, सन्तन-संगति जाहि ॥४॥
विषयन से वैराग्य अरु, सत्यासत्-विवेक।
द्वितीय 'विचार' सुभूमिका, गहे सत्य करि टेक ॥५॥

जब पुरुष को ऐसी ग्लानि होती है—"सत्य परमात्मा में मेरी बुद्धि नहीं है, मैं मूर्ख तथा अज्ञानी हूं। मैंने अपने उद्धार-निमित्त महात्माओं का समागम एवं सच्छास्त्रावलोकन कभी भी नहीं किया।" तो यही ज्ञान को 'शुभेच्छा' नाम की प्रथम भूमिका कहलाती है। तथा सत्य और असत्य के विवेक (ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है) एवं विषय-वैराग्य से युक्त होकर जो सन्तों का समागम तथा सत्शास्त्रों के श्रवण पूर्वक सत्यात्मा को दृढ़तया धारण करे तो वही 'विचार' नाम की दूसरी सुन्दर भूमिका है।"

सहित शुभेच्छु विचार पुनि, इन्द्रियनका बनि नाथ।
तिसरी है 'तनुमानसा' तत्त्वमनन के साथ ॥६॥
श्रवण मनन निदिध्यासन, तीन भूमिका-युक्त।
चौथी 'सत्त्वापत्ति' है, सत्यात्मा में रक्त ॥७॥
चार भूमिका अन्त फल, भूति माहिं निःसक्ति।
उक्ति ज्ञान की भूमिका, पाँचवीं 'असंसक्ति' ॥८॥

"जब शुभेच्छा और विचार, इन दोनों भूमिकाओं से युक्त होकर तथा इन्द्रियों का स्वामी बनकर अर्थात् उनपर पूरा अधि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का(प्राप्त .र पूर्व श्रवण किये हुए तत्त्व का मनन होने लगता है तो वही 'तनुमानसा' नाम की तीसरी भूमिका कहलाती है। तथा जब पूर्वोक्त तीन भूमिकाओं से युक्त होकर श्रवण और मनन के साथ-साथ निदिध्यासन चलने लगता है एवं सत्य आत्मा में अनुरक्ति होने लगती है तो वही "सत्वापत्ति" नाम की चौथी भूमिका कहलाती है। और चार भूमिकाओं के परिपक्व हो जाने पर जो लौकिक एवं पारलौकिक ऐश्वर्यों में पूर्ण अनासक्ति हो जाती है, वही "असंशक्ति" नाम की पाँचवीं भूमिका कही गयी है।"

दृश्य वस्तु की विस्मृती, बहु प्रकार की तुच्छ।
भीतर-बाहर की सभी, अभि अन्तर अति स्वच्छ ॥९॥
नाम 'पदार्थाभावनी' छठीं ज्ञान की सींव।
छठवीं के अभ्यास से, भेद-भाव गत नींव ॥१०॥
दृढ़ता आत्म-स्वरूप में, सातें 'तुरीया' जान।
कह वसिष्ठ श्रीराम से, सप्त भूमिका-ज्ञान ॥११॥

पाँचवां भूमिका रूप असंसक्ति के, प्रताप से 'जब अंतःकरण अत्यन्त निर्मल हो जाता है और बाहर तथा भीतर (मानसिक) की विविध प्रकार की दृश्य वस्तुएँ मिथ्या होकर वे विस्मृत होने लगती हैं तो वही "पदार्थाभावनी" नाम की छठीं भूमिका ज्ञान की सीमा कही गयी है। और जब आत्मास्वरूप में स्थिति दृढ़ हो जाती है तो हे शिष्य! उसे "तुरीया" नाम्नी सातवीं भूमिका जानो।"

यथा जाग्रत जगत् की, तीन भूमिका आदि।
चौथी है तत्त्वज्ञ की, तत्पर जो श्रवणादि ॥१२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये हैं जीवन मुक्त की, छठीं पांचवी दोय।
सातवीं मुक्ति विदेह की, जामें स्थिर सो होय ॥१३॥

"पूर्वोक्त सात भूमिकाओं में से "प्रथम की तीन (शुभेच्छा सुविचार और तनुमानसा) भूमिकाएँ जगत् की जाग्रदवस्था की हैं, चौथी तत्त्वज्ञ की है जो श्रवणादि में तत्पर रहता है, पाँचवीं और छठीं, ये दोनों जीवन्मुक्त की है और सातवीं (तुरीया) विदेहमुक्त पुरुष की है, जिसमें पहुँचकर वह स्थिर हो जाता है।"

इन ज्ञान की सात भूमिकाओं को मुनिवर श्री वसिष्ठ जी ने श्रीरामचंद्र के प्रति योगवासिष्ठ के "उत्पत्ति" नाम के तीसरे प्रकरण में कही हैं। अन्य वेदांत ग्रंथों में प्रतिपादित भूमिकाओं से इसमें कुछ विलक्षणता है, परंतु भाव एक ही है। उन भूमिकाओं को भी मैंने "ज्ञानामृत" और "श्रीराम गीता" के अनुवाद में लिखी है। उनमें साधन चतुष्टय-सम्पन्न हो जाने पर प्रथम भूमिका समाप्त होती है, तब और भूमिकाएँ चलती हैं। परंतु यहाँ विचार करने से पता चलता है कि विवेकादि साधनों के साथ ही साथ शुभेच्छा आदि भूमिकाएँ भी चलती हैं, जैसे प्रथम भूमिका में जो अपने कर्तव्य और बुद्धि के विषय में पश्चात्ताप है, वह यज्ञ, दानादि शुभ कर्मों के परिपाक से अंतःकरण की शुद्धि का फल है। दूसरी भूमिका में विवेक और वैराग्य इन दोनों साधनों का वर्णन है, तीसरी भूमिका में जो इंद्रियों के वश कर लेने की वार्ता है उससे शम और दम की सूचना मिलती है। चौथी भूमिका में जो श्रवण, मनन और निदिध्यासन कहे गये हैं, इससे उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा एवं समाधान समझना चाहिये क्योंकि इनके बिना श्रवणादि हो ही नहीं सकते। और मुमु-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षुता का साधन तो शुभेच्छा नाम की प्रथम भूमिका से ही प्रतीत होता है।

प्रथम की तीन भूमिकाएँ संसार की जाग्रत अवस्था की इसलिए कही गयी हैं कि उन अवस्थाओं तक जगत् की असलियत बनी रहती है। पुरुष विचार द्वारा तो असत्य समझता है परंतु मनमें इसकी सत्यता रह ही जाती है और राग द्वेष निर्मूल नहीं होते। चौथी भूमिका में आत्म-तत्त्व का ज्ञान हो जाता है, अतः वह तत्त्वज्ञकी कही गयी है। तथा पाँचवी और छठीं में तो चित्त से जगत् की नित्यता एवं सुखरूपता निकल जाती है। इनमें पहुँचा हुआ पुरुष प्रारब्ध से प्राप्त हर एक व्यवहारों को करता तथा भोगों को भोगता हुआ आसक्ति और वासनाओं से रहित होने के कारण उनसे सदा मुक्त रहता है; अतः ये अवस्थाएँ जीवन मुक्त की कहलाती हैं। सातवीं भूमिका में पहुँचकर वह पुरुष आत्मरूप में ऐसा दृढ़ स्थित हो जाता है कि वह बेसुध होने लगता है और उसको अपने तन, मन की सुधि भूलने लगती है। अतः उस अवस्था में वह व्यावहारिक कार्यों को सुचारुरूप से करने में असमर्थ हो जाता है, इसलिये ही वह अवस्था विदेह मुक्ति की कही गयी है, नहीं तो श्रुति शास्त्रों में शरीर छोड़कर सामान्य सत्ता में लय होना ही विदेह मुक्ति कही गयी है।

अन्य ग्रंथों में चौथी भूमिका में पहुँचे हुए पुरुष को सम्प्रज्ञातवाला तथा ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मवित् अथवा ब्रह्मवेत्ता कहा गया है। पाँचवीं भूमिका में पहुँचने पर उसे असम्प्रज्ञात समाधिवाला ब्रह्मविद्वरीयान् कहा गया है। छठीं में पहुँचने वाले को ब्रह्मविद्वर और सातवीं वाले को ब्रह्मविद्वरीष्ठ कहा गया है अस्तु!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिष्य ने पूछा था कि यत्न शेष कब होता है तथा संसार की प्रतीति कबतक रहती है और जीवन मुक्ति एवं विदेह मुक्ति क्या है ? उस का उत्तर दिया जाता है:—

यत्न शेष चौथा मिले, शर में भान न देह।
छठीं पांचवीं दोय ये, जीवन शेष विदेह ॥१२॥

हे शिष्य ! "चौथी भूमिका के प्राप्त होने पर जब आत्म-तत्त्व की प्राप्ति होकर उसमें अनुरक्ति हो जाती है, तब पुरुषार्थ का अन्त हो जाता है, [परंतु फिर भी जो समाधि का अभ्यास करता जाता है तो] पाँचवीं भूमिका में जाकर शरीर की सत्यता का भाव मिटने लगता है, जब शरीर का ही सत्यत्व मिटने लगता है तो संसार की सत्यता का भाव कैसे हो सकता है ? क्योंकि जगप्रतीति में देहाभिमान ही कारण है और पाँचवीं तथा छठीं भूमिकाएँ तो जीवन मुक्ति की एवं शेष सातवीं विदेह मुक्ति की अवस्था कहलाती है।"

प्रश्न—हे प्रभो ! जीवनमुक्त और विदेहमुक्ति, इन दोनों महानुभावों के व्यवहार किस प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—हे प्रिय ! व्यवहार में ज्ञान कारण नहीं है। ब्रह्म एक है और उसका ज्ञान भी एक ही है, अतः सम्पूर्ण ज्ञानीजन एक ही स्थिति में स्थित रहते हैं, परन्तु उनके व्यवहारों में अदृष्ट हेतु है, इसीको प्रारब्ध या प्राक्तन संस्कार कहते हैं। इस अदृष्ट के ही कारण एक ही साम्यावस्था में स्थित रहते हुए भी ज्ञानी पुरुषों के आचरण भिन्न-भिन्न होते हैं। इधर शुक, जड़ भरत, दत्तात्रेय तथा सनकादि बाल्यावस्था से ही आजीवन निवृत्ति-मार्ग की अवधूत वृत्ति में विचरे तो उधर अश्वपति, जनक, व्यास एवं वसिष्ठादि आजीवन प्रवृत्ति मार्ग के व्यवहारों में रहे इधर मुनि याज्ञवल्क्यजी ने प्रथम प्रवृत्ति मार्ग में रहकर पश्चात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुढ़ापे में जीवन मुक्ति के सुखनिमित्त निवृत्ति मार्ग (संन्यास) का आश्रय लिया तो उधर राजा शिखरध्वज ने प्रथम राज काज छोड़कर जंगल में जा तप किया तथा जब आत्म-ज्ञान हो गया तो अपने देश पर आकर पुनः राज्य किया। इसीसे कहा है:—

"कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी नृपौ जनक राघवौ।
वसिष्ठः कर्मकर्त्ता च पञ्चैते ज्ञानिनः समाः॥"

"व्यवहार दृष्टि से कृष्ण भोगी, शुकदेव त्यागी तथा जनक और रामचन्द्र राजा एवं वसिष्ठ कर्मकर्ता थे, परन्तु परमार्थतः ये पाँचों महापुरुष एक समान ही ज्ञानी थे।"

इस रीति से हे महाप्राज्ञ! जीवन मुक्त पुरुष देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार प्राप्त हुए समस्त लौकिक एवं वैदिक कर्मों को करता है, परन्तु उनमें उसको न तो आसक्ति रहती और न कर्तृत्व का अभिमान हो। वह उन्हें स्वप्नवत् मिथ्या जानता हुआ उनसे सुषुप्ति की तरह उदासीन रहता है। उस पुरुष के व्यवहार में जरा भी विषमता नहीं आती। व्यवहार की शोभा कहीं भी बिगड़ने नहीं पाती। बल्कि वह अपने परिवार, जाति सम्प्रदाय और देश के प्रति यथायोग्य व्यवहार करता हुआ भीतर से नीरस रहता है और प्रारब्धगत कर सामान्य सत्ता में लय हो जाता है। उसके प्राण कहीं भी किसी लोक में गमन नहीं करते। जैसे श्रुति ने कहा है:—

"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति"

परन्तु इस प्रकरण में कथित विदेहमुक्त पुरुष से व्यावहारिक कर्म सुचारु रूप से नहीं हो सकते। कारण, वह ब्रह्मानन्द में इतना डूब जाता है, उसका अभ्यास इतना बढ़ गया रहता है कि उसके तत्त्वज्ञान और वासनानाश के साथ-साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनोनाश भी हो गया रहता है तथा उसका प्रारब्ध भोग भी क्षीण होकर बहुत ही थोड़ा रह गया रहता है। उससे आत्मानन्द की मस्ती में देह तथा आचरण का सम्हाल नहीं होता। वह विधि-निषेध से अलग रहकर कभी बालक-सा तो कभी सयान-सा; कभी मूर्ख के सदृश तो कभी पण्डित के समान; कभी पागल—सरिस तो कभी बुद्धिमान-सा आचरण करता है।

कबहूँ बकत बात पागल-समान यों ही,
कबहूँ पण्डित-सम बचन उचारयो है।
कबहूँ हँसत, मन कबहूँ उदास होत,
कबहूँ रहत चुप मानो मौन धारयो है॥
कबहूँ नगर होई फिरत भिखारी सम,
कबहूँ नृपति-सों सुन्दर वस्त्र धारयो है।
ज्ञानकी अलख गति लखे कौन जगमाईं,
जहँ दृष्टि जात, तहँ ब्रह्मही विचारयो है॥१॥
कबहूँ अशन शाक, कबहूँ मिष्टान्न खात,
कबहूँ शयन महि, कबहूँ निवार है।
कबहूँ लगाई दृढ़ आसन समाधि करै,
कबहूँ उतावल फिरत द्वार-द्वार है॥
कबहूँ रुदन करै बालक अजान-इव,
कबहूँ सुयान-सम करै व्यवहार है।
विधि न निषेध तेहि जीवन मुकुत सोई,
अद्भुत ज्ञानीकर महिमा अपार है॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसी अवधूत—कोटि के महापुरुष के लिए श्रुति, शास्त्र तथा आचार्यों के ये वचन हैं—

'अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्ताचारः ।

(श्रुति)

ज्ञानी पुरुष अव्यक्त (अप्रकट) चिन्ह और अव्यक्त आचारवाला होता है'

"यं न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित् स ब्राह्मणः ॥
गूढ़ धर्माश्रितो विद्वान् अज्ञातचरितं चरेत् ।
अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ॥"

(स्मृति)

"निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः"

(शङ्कराचार्य)

"येन केनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाशितः
यत्र क्वचनशायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
अहेरिव गणाद्भीतः, सौहित्यान्नरकादिव ।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
न क्रुध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः ।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्मुक्तं सर्वसङ्गेभ्यो मुनिमाकाशवस्थितम् ।
अस्वमेकचरं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ।
निर्मुक्तं बन्धनैः सर्वैस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

(महाभारत शान्ति पर्व, मोक्षपर्व अ० २४५)

इस प्रकार वह विदेहमुक्त पुरुष नाना गतियों से स्वच्छन्द विचरता हुआ प्रारब्ध-शेषकर सामान्यसत्ता में लय हो जाता है और फिर वह संसार में नहीं लौटताः—

"न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते"

(श्रुति)

"वह फिर नहीं लौटता, वह फिर नहीं लौटता।"

छठां परिच्छेद

सर्वोत्कृष्ट प्रणव-उपासना

शिष्य बोलाः—

हे दीनबन्धो! मैंने आपके अनुग्रह से साधनों के सहित ब्रह्मात्मा का स्वरूप जाना तथा यह भी जाना कि उस ज्ञेयात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर पुरुषार्थ की समाप्ति हो जाती है और जीवनमुक्त तथा विदेहमुक्त की अवस्था, उनके आचरण और गति को भी भलीभाँति जानी। आपके अमृत वचनों से मेरे सकल संशय दूर हो गये, परन्तु हे महामते! जिन मुमुक्षु पुरुषों की सामर्थ्य महावाक्य विचार करने में नहीं है, उन्हें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्या कर्त्तव्य है ? उन्हें आत्म प्राप्ति कैसे होगी ? आप कृपया कहें।

महावाक्य-सुविचार में, जिनकी गति है नाहिं।
आत्मप्राप्ति कैसे प्रभो, हो उनके उर माहिं ॥ १ ॥

महात्मा बोले—

हे प्रिय ! जो मन्द बुद्धिवाले जिज्ञासु पुरुष तत्त्वमस्यादि महावाक्यों के विचार करने में असमर्थ हों, उन्हें अहंग्रह-उपासना करनी चाहिये। उन्हें अहंग्रह की उपासना से ही ज्ञान हो जायेगा।

महावाक्य-सुविचार में, जो गतिहीन अजान।
ध्यान अहंग्रह का किये, होत ब्रह्म का ज्ञान ॥ २ ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! अहंग्रहोपासना क्या कहलाती और वह किस प्रकार से की जाती है ?

उत्तर—हे शिष्य ! प्रणव (ॐकार) की उपासना ही अहंग्रहोपासना कहलाती है तथा इसीको निर्गुण ब्रह्म की उपासना भी कहते हैं। यह निर्गुणोपासना सम्पूर्ण उपासनाओं से श्रेष्ठ समझी गयी है। इसके द्वारा ब्रह्मात्मा का ज्ञान होकर पुरुष मुक्त हो जाता है। श्रुति में इस प्रणव का ध्यान दो प्रकार से कहा गया है:—पहला अपरब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। सगुण ब्रह्मको अपरब्रह्म और निर्गुण ब्रह्मको परब्रह्म कहते हैं। जैसे:—

एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः (प्र० ५।२)

"हे सत्यकाम ! जो परब्रह्म और अपरब्रह्म है, वह निस्सन्देह यह ॐकार है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परन्तु विशेष जगह इसे निर्गुण ब्रह्म ही कहा गया है। इसका वाच्य तो माया-उपाधिवाला (माया विशिष्ट) सगुण ईश्वर है और लक्ष्यार्थ मायातीत (मायोपहित) निर्गुण ब्रह्म है। जब तो पुरुष वाच्यार्थ के ध्यानपूर्वक इसकी उपासना करता है, तब उसे सांसारिक धन-धान्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और लक्ष्यार्थ की उपासना से वह मुक्ति का लाभ करता है। इसीसे कहा है:—

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकारं तं नमाम्यहम् ॥

"योगीजन बिन्दु के सहित ॐकार का ध्यान नित्य करते तथा जो भोग और मोक्ष दोनों को ही देनेवाला है, उस ॐ को नमस्कार करता हूं।" कठोपनिषद् में भी कहा है:—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म ह्येतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥
(१।२।१६)

"निस्सन्देह यह अक्षर (ओंकार) [अपर] ब्रह्म है, और यही पर [ब्रह्म] भी है; इस अक्षर को जान कर निश्चय जो जैसा चाहता है, उसके लिए वैसा ही हो जाता है।"

"तस्य वाचकः प्रणवः" "उस ब्रह्म का वाचक प्रणव है" इस योगसूत्र से उस ब्रह्म का वाचक प्रणव होता है। क्योंकि वाचक वाच्य में कुछ अन्तर नहीं होता, अतः यह प्रणव निस्सन्देह ब्रह्म ही है। गीता में भी कहा है—"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" "'ओम्' ऐसा यह एकाक्षर ब्रह्म है" "प्रणवः सर्ववेदेषु" "सब वेदों में प्रणव मैं हूँ" इत्यादि-इत्यादि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस श्रुति से यह सारा ब्रह्मरूप ही है तथा 'अयमात्मा ब्रह्म' इससे यह आत्मा और ब्रह्म सब कुछ ॐकार रूप ही है, इसीसे माण्डूक्योपनिषद् में कहा है:—

ओमित्येतदक्षरमिद ॐ सवं तस्योपव्याख्यानम् ।
भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव च ॥
यच्चान्यत्त्रिकालातीत तदप्योङ्कार एव ।
सर्व ॐ ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म ॥ (१-२)

"ॐ" ऐसा यह एकाक्षर यह सब कुछ है। उसकी भली-भाँति व्याख्या की जाती है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ ॐ कार ही है। अन्य भी जो कुछ तीन काल से परे (सर्वाधिष्ठान) पदार्थ है, वह ॐ कार ही है। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है।"

हे सौम्य! इस जगत् में जितने भी पदार्थ हैं, वे नामवाले हैं और वे सम्पूर्ण नाम एक ब्रह्म के ही लक्षक हैं, क्योंकि उनके अर्थ उन पदार्थों में नहीं घट सकते। एक प्राण और प्रज्ञा को ही ले लीजिये। प्र और अन मिलकर प्रान शब्द होता है। 'प्र' का माने होता है "निरतिशय" और 'अन' का अर्थ है "क्रिया"। जिसमें निरतिशय क्रिया हो उसका नाम है प्राण। अब विचार करने की बात है कि प्राण तो जड़ है, उसमें क्रिया क्योंकर हो सकती है? अतः वह प्राण शब्द चेतन आत्मा का ही लक्षक है। और प्र तथा ज्ञा मिलकर प्रज्ञा शब्द होता है। प्र के माने निरतिशय और ज्ञा के माने ज्ञान होता है। जिसमें निरतिशय ज्ञान हो उसका नाम है प्रज्ञा। प्रज्ञा (बुद्धि) भी भूतों का कार्य होने से जड़ ही है, अतः यहाँ भी प्रज्ञा शब्द का तात्पर्य चेतन ब्रह्म ही में है। इत्यादि २।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे शिष्य ! अब मैं माण्डूक्य श्रुति के अनुसार प्रणव की उपासना बतलाता हूं, सुनो ! जैसे यह आत्मा जाग्रदादि अवस्थाओं के भेद से चार पादवाला कहा गया है. वैसे ही ब्रह्म और प्रणव भी समष्टि उपाधियों तथा मात्राओं के भेद से ही चार चार पादवाले कहे गये हैं, वस्तुतः इनमें कोई भेद नहीं है। समष्टि कहते हैं सम्पूर्ण को और व्यष्टि एक अंश या हिस्से को। जब यह आत्मा जाग्रदवस्था में स्थूल शरीर का अभिमान करके विशेषतया नेत्रवृत्ति के द्वारा स्थूल जगत् का उपभोग करता है तो सात अङ्गों एवं उन्नीस मुखोंवाला वैश्वानर या विश्व नाम से कहा जाता है। शीश स्वर्ग, नेत्र सूर्य, प्राण वायु, धड़ आकाश, समुद्र मूत्राशय, पृथिवी पैर, तथा हवन करनेवाली अग्नि मुख, ये सात अंग (छा० ५।१८।२) तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण—ये उन्नीस मुख हैं। यद्यपि ये सात अंग विराट के हैं, तथापि विश्व और विराट ये दोनों स्थूल के अभिमानी हैं और इनमें अन्तर सिर्फ व्यष्टि तथा समष्टि का ही है। छांदोग्य श्रुति के वैश्वानर यज्ञविधि में विश्वरूप आत्मा की विराट से एकता बताई गयी है तथा एकत्वरूपेण ध्यान करना बतलाया गया है। और जाग्रदवस्था में यह जीव कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, प्राण और अन्तःकरणों के द्वारा बाहरी व्यवहारों एवं भोगों का कर्ता तथा भोक्ता होता है, अतएव इस आत्मा के ये उन्नीस मुख कहलाते हैं:—

करण चतुर्दश प्राण मुख, स्थूल व्यष्टि जेहि भोग।
भोक्ता विश्व बखानिये, जो जाग्रत के योग ॥३॥

तथा:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूक्ष्म व्यष्टि संघात का, भोक्ता मुख उन्नीस।
तैजस नाम बखानिये, स्वप्न अवस्थाधीश ॥ ४ ॥
भोक्ता आनन्द रूप का, जहां व्यष्टि अज्ञान।
तात! सुषुप्ती होत जहँ, प्राज्ञ नाम तहँ जान ॥ ५ ॥

हे तात! फिर जब वही आत्मा स्वप्नावस्था में कण्ठ की बाल से भी सूक्ष्म हितानाम्नी नाड़ी में स्थित होकर सूक्ष्म शरीर का अभिमान करके सूक्ष्म भोगों का भोक्ता होता है तो वहाँ सात अंगों तथा उन्नीस मुखोंवाला तैजस नामसे कहा जाता है। पुरुष इस जन्म या पूर्व जन्मों में जो कुछ देखा या सुना रहता है, उसी के संस्कार से निद्रावस्था में भोक्ता, भोग्य और भोक्तृत्व की सृष्टि बन जाती है वहाँ सबके-सब पदार्थ वासनात्मक होने से सूक्ष्म ही होते हैं। पुनः जब वही आत्मा प्रगाढ़ निद्रा में चला जाता है और स्वप्न देखना बन्द हो जाता है तः उस सुषुप्ति अवस्था में हृदय देश में अविद्या में स्थित होकर आनन्दघन (निजानन्द का) ही उपभोग करता है; तब उस समय वह चैतन्य मुखवाला तथा आनन्द का भोक्ता प्राज्ञ कहलाता है। उस अवस्था में जाग्रत और स्वप्न की सारी सृष्टियाँ एक अविद्या में लय हो जाती हैं। सबको अपने में लय करके सबकी कारण रूपिणी एक अविद्या वैसे ही रह जाती है, जैसे सकल नदियों एवं झरनों को अपने गर्भ में लेकर पहाड़ों में वर्फ स्थित रहता है, अथवा जैसे डाली, शाखा, पत्ते तथा फूल-फलों के सहित महाकाल वाले वटवृक्ष को अपने भीतर सन्निहित कर एक नन्हा-सा बीज स्थित रहता है। उस सर्वकारणमयी अविद्या के साथ में रहने से वह आत्मा निखिल विश्व की उत्पत्ति और लयका कारण,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्तर्यामी, सर्वज्ञ इत्यादि विशेषणोंवाला कहा जाता है। अविद्या की ही समष्टि एवं शुद्ध सतोगुण प्रधान अवस्था को माया कहते हैं और उस माया से युक्त हुआ परमात्मा अंतर्यामी ईश्वर कहलाता है, अतः प्राज्ञ और ईश्वर को एक ही समझना चाहिये। समष्टि सूक्ष्म शरीर का अभिमानी होने से वही चेतनात्मा हिरण्यगर्भ कहलाता है अतः तैजस को हिरण्यगर्भ का स्वरूप जानना चाहिये। इसी तरह समष्टि स्थूल ब्रह्माण्ड का अभिमानी चेतन विराट कहलाता है, अतः इससे विश्व से एकता है।

व्यष्टि और समष्टिरूप स्थूल, सूक्ष्म और कारण, इन तीनों उपाधियों को मायामय मिथ्या समझकर त्याग देने पर पूर्वोक्त सारी संज्ञाएँ मिटकर एक चेतन ही बच रहता है, और उसी को तुरीय एवं शुद्ध चेतन कहते हैं। गुरु, श्रुति एवं युक्तियों के द्वारा उपाधियों का बाध करके जब वृत्ति उस शुद्ध चेतन के आकार की हो जाती है तो आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति होती है, उसी को समाधि सुख माना गया है। यह हठयोगियों की जड़ समाधि नहीं है, अपितु यह राज योगियों की चेतन समाधि है—

जग स्थूल अखिल उपाधि है विराटकर,
अखिल सूक्षम जग हिरण्य को मानिये।
मूलाज्ञान कारण उपाधि जान ईश्वर की,
ताही से सूक्षम-स्थूल यह जग जानिये॥
त्यागी के उपाधि तीन चेतन स्वरूप शेष,
वाही को तुरीय शुद्ध चेतन बखानिये।
गुरु-श्रुति युक्ति से जनित ज्ञानाकार वृत्ति,
तदाकार ताहि को समाधि सुख मानिये॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

अब यह बतलाया जाता है कि वृत्ति उपाधियों को त्यागकर शुद्ध चेतन से एकता कैसे प्राप्त करती है:—

आदि स्थूल उपाधिवाले विश्व और विराट दोनों हैं, अतः ये दोनों एक ही हैं तथा मध्य सूक्ष्म उपाधिवाले होने से तैजस और हिरण्यगर्भ की एक रूपता समझनी चाहिये और अन्त की उपाधि रूप कारण से युक्त प्राज्ञ तथा ईश्वर, ये दोनों हैं, अतः इनमें परस्पर कोई भेद नहीं है। तीनों समष्टि उपाधियों का त्याग कर देने पर जो केवल चेतन बच रहता है, वह शुद्ध चेतन कहलाता है। वही शुद्ध चेतन इन तीनों उपाधियों से युक्त तथा इनका अधिष्ठान होने से चार पादवाला कहलाता है। पूर्वोक्त विराट, हिरण्यगर्भ तथा अन्तर्यामी रूप ईश्वर, ये तो उसके तीन पाद हैं तथा उसका चौथा पाद शुद्ध चेतन है। इसी को ईश्वर साक्षी कहते हैं।

जिस प्रकार आत्मा और ब्रह्म चार-चार पादवाले हैं, वैसे ॐ कार भी चार पादवाला है। उसका अकार पहला पाद है, उकार दूसरा और मकार तीसरा है। ये अ, उ और म मिलकर पूरा ॐ होता है। इसका चौथा पाद तो अमात्र है। जो चेतन संसार की हर एक वस्तुओं का अधिष्ठान है, वही इन अकारादि मात्राओं में भी अनुगत हुआ इनका अधिष्ठान बन रहा है। यहाँ पर उसी चेतन को अमात्र कहा गया है।

ब्रह्मात्मा का दो रूप कहा गया है—एक तो परमार्थ रूप और दूसरा अपरमार्थ रूप। अकार, उकार और मकार रूप तीन वर्ण मिलकर उसका अपरमार्थ रूप है एवं तीनों मात्राओं में व्यापक जो अस्ति, भाति तथा प्रियरूप अधिष्ठान है, वह उसका परमार्थ रूप है, उसी को यहाँ अमात्र कहा गया है।

इतनी बातें जान लेने के बाद अब उपासक पुरुष को ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि ॐ कार की पहली अकार मात्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विश्वरूप विराट का स्वरूप ही है क्योंकि जैसे वह पहला पाद है, वैसे ही यह भी पहली मात्रा है; तथा उकार मात्रा दूसरी होने से तैजसरूप हिरण्य गर्भ का रूप ही और तीसरी मात्रा मकार की उस तीसरे प्राज्ञस्वरूप ईश्वर से एकता है।

कारण से सूक्ष्म कार्य की उत्पत्ति होती है और सूक्ष्म से स्थूल की। कार्य अपने उपादान कारण में ही लय होता है, जैसे घड़ा टूटकर मिट्टी में विलीन होता है। इस नियम से स्थूल जगत् को सूक्ष्म जगत् में लय करे, सूक्ष्मको कारण में और कारण जगत् रूप माया को उसके अधिष्ठान रूप शुद्ध चेतन में लय करे। कल्पित वस्तु अपने अधिष्ठान से वैसे ही भिन्न नहीं होती, जैसे रस्सीका कल्पित सर्प उस रस्सी से पृथक् नहीं होता, वरन् रस्सीरूप ही होता है। इसी प्रकार क्योंकि कारण माया एक ही शुद्ध चेतन में अनादि कल्पित है, अतः वह उससे पृथक् नहीं है, प्रत्युत वह उसका रूप है। इस प्रकार से जो अंतिम शुद्ध तत्त्व रह जाता है, वह मैं हूँ—ऐसा ध्यान करे। यही है अहं-ग्रहोपासना। अतः—

विश्व और विराट के स्वरूप अकार को उकार में लय करके सारी स्थूल सृष्टि को भूल जाय। तदनन्तर तैजस और हिरण्य गर्भ के स्वरूप उकार को मकार में लय करके सूक्ष्म सृष्टि को भी चित्त से हटा दे। फिर प्राज्ञ और अन्तर्यामी के स्वरूप मकार को अमात्ररूप चेतन में लय करके कारण का भी अस्तित्व मिटा दे अर्थात् ऐसा चिन्तन करे कि अविद्या और माया के सहित सारी सृष्टि विलय हो गयी; अब इन उपाधियों के किये हुए चेतन के भेद भी न रह गये। समस्त उपाधियों के लय करने पर जो यह चौथा पाद अमात्र बचा है, वह आत्मा के चौथा पाद कूटस्थ (तुरीय) स्वरूप ही और वह कूटस्थ ब्रह्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के चौथा पाद शुद्ध चेतन से अभिन्न है, अतः अमात्र, कूटस्थ और शुद्ध चेतन में कोई भेद नहीं है, प्रत्युत जो शुद्ध चेतन है वही कूटस्थ है और जो कूटस्थ है, वही अमात्र है; तथा जो अमात्र है, वही शुद्ध चेतन है और जो शुद्ध चेतन है, वही कूटस्थ है। एक ही शुद्ध चेतन को अकारादि मात्राओं की अपेक्षा अमात्र तथा जाग्रदादि अवस्थाओं के कारण कूटस्थ (तुरीय) और स्थूलादि उपाधियों से ही ब्रह्म संज्ञा पड़ी थी। जब आत्मा, ब्रह्म और ॐकार, इन तीनों के तीनों पाद लय हो गये तो अब चौथेपाद भी न रह गये, अपितु तीनों चौथे पाद मिलकर एक शुद्ध चेतन ही रह गया, उसे अमात्र, कूटस्थादि भी नहीं कह सकते। उसके सम्बन्ध में माण्डूक्य की श्रुति कहती है:—

"अमात्रोऽश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः
शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव।"

"जो मात्रा रहित, चौथेपाद से पृथक्, व्यवहार से अलग प्रपञ्च से भिन्न तथा कल्याण स्वरूप अद्वितीय है, वह इस प्रकार यह ॐकार आत्मा ही है।" और:—

"संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद।"

"जो इस प्रकार [सूक्ष्म-तथा शुद्ध] बुद्धि के द्वारा अपने को जानता है, वह [उसी शुद्ध चेतन में] प्रवेश करता है।"
तात्पर्य:—

ऐसा जो शुद्ध ब्रह्म है, वह मैं हूं' इस प्रकार चिन्तन करता हुआ उपासक पुरुष बाह्य और भीतर के भी सभी जगत् को भूलकर ब्रह्मतत्त्व में अभेद भाव से स्थित हो जाता है। यही है अहंग्रहोपासना। इस प्रकार की उपासना द्वारा उपासक पुरुष ब्रह्म का साक्षात्कार कर वह जीते-जी ब्रह्मरूप हो जाता है। वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रारब्ध पर्यन्त तो जीवन-मुक्ति के विलक्षण आनन्द का उपभोग करता है और शरीरान्त होने पर सामन्य ब्रह्म में लय होकर विदेह मुक्त हो जाता है। फिर उसका जन्म नहीं होता। परन्तु यदि इस प्रणवोपासक पुरुष का शरीर बिना ब्रह्म साक्षात्कार किये ही छूट गया, तब तो वह फिर मनुष्य का शरीर धारण कर पूर्वाभ्यास के द्वारा उपासना की ओर खिंच जाता है तथा उस प्रणवोपासना के अभ्यास से ब्रह्म दर्शन कर मुक्त हो जाता है। यदि प्रणवोपासना में लगे हुए पुरुष के चित्त में ब्रह्मलोक के भोगों की कामना बनी रहती है, तो उस प्रतिबन्धकता से आत्मा का अपरक्षो ज्ञान नहीं होता, अपितु उस प्रणवोपासना के प्रताप से वह पुरुष उत्तरायण मार्ग के द्वारा ब्रह्मलोक में जाकर वहाँ चिरकाल तक दिव्य भोगों को भोग कर या तो वहाँ ब्रह्मदेव से उपदेश पाकर अथवा स्वतः ज्ञान होकर मुक्त हो जाता है। अथवा यदि संसारी भोगों की कामना रही, तो वह पुनः मृत्युलोक में आकर किसी पवित्र श्रीमान् के कुल में जन्म लेकर, पूर्व संस्कारवश उपासना में बलात्कार खिंच जाता है और पुनः उस प्रणवोपासना के द्वारा आत्मा का यथार्थ अनुभव कर मुक्त हो जाता है।

हे शिष्य! ब्रह्मलोक को ही सत्यलोक कहते हैं। वह शुद्ध-सतोगुण प्रधानलोक है, अतः वहाँ पहुँचते ही पुरुष सत्य संकल्पवाला हो जाता है। वहाँ वह पुरुष जो-जो कामना करता है वह सब हो जाता है। वह एक ही साथ अनेक शरीरों को धारण कर विविध भोगों का भोग कर सकता है। उसके संकल्प मात्र से वहाँ मनुष्यलोक, पितरलोक एवं स्वर्गलोकादि के भोग उपस्थित हो जाते हैं। अधिक क्या, एक सृष्टि, पालनादि रूप व्यवहार को छोड़ कर वह पुरुष वहाँ सब कुछ करने में समर्थ होता है। क्योंकि सृष्टि आदि के काम ईश्वर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकरण के हैं, अतः इनमें वह असमर्थ होता है। (मु० ३।१।६ एवं छा० ८।४।३) वह वहाँ ब्रह्मा के आयु पर्यन्त दिव्य भोगों को भोगता हुआ जीवनमुक्त होकर रहता है और ब्रह्माजी के आयु शेष होने पर उनके साथ ही अद्वैत ब्रह्म में लय रूप विदेह मुक्ति को पाकर फिर जन्म नहीं लेता।

संसारी कामनावाला पुरुष रागवान् होने के कारण श्रीमान् के घर में जन्म तो लेता है, परन्तु पूर्व उपासना के प्रताप से पवित्र, शुद्धाचरणी एवं ज्ञानवान् जनकादि-सरीखे श्रीमानों के यहाँ पैदा होता है। जैसे गीता में कहा है:—

'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते'

परन्तु जो वैराग्यवान् उपासक पुरुष ब्रह्मलोक में नहीं जाता, वह ज्ञानवान् योगियों के कुल में जन्म लेता है, अतः उसका अभ्यास बड़ी तीव्रता से चलता है क्योंकि वहाँ राज्य-काजादि की झंझटें नहीं होती। इसी लिए गीता में ऐसे जन्म को लोक में दुर्लभतर कहा है। जैसे:—

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥
(अ० ६।४२)

गुरुवर तव मुखकमल से, सुनि महात्म्य ओंकार।
नहीं तृप्त मन अज मम, पुनि कहिये सरकार॥ ३॥

"गुरुवर! आपके मुखारविन्द से ॐकार का महात्म्य सुनकर आज मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है, अतः सरकार! (इसके विषय में) फिर भी कहें।"

ब्रह्मरूप इस प्रणव की, तात! प्रभाव अनन्त।
शेष शारदा वेद नित, कहहिं न पावहिं अन्त॥ ४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

"हे तात! ब्रह्मस्वरूप इस प्रणव की महिमा अनन्त है, शेष, शारदा तथा वेद नित्य-निरन्तर इसके महत्व का कथन करते रहते हैं, फिर भी वे अन्त न पाकर 'न इति' (नेति) 'का आश्रय लेते हैं।"

फिर भी मैं कुछ कहता हूँ, वेद-कथन-अनुसार।
तव श्रद्धा के विवश हो, सुन महिमा ओंकार ॥ ५ ॥

"फिर भी हे शिष्य! सुनो, मैं तुम्हारी श्रद्धा के विवश होकर श्रुतिके-कथनानुसार ॐकार की कुछ महिमा कहता हूँ।"

एक समय श्रीब्रह्माजी ने तीन लोक चौदहभुवन मय ब्रह्मांड में प्राणियों को त्रिविध ताप एवं जन्म-मरणरूपी दुःख से दुखित देखकर तथा परम करुणायुक्त होकर उनके क्लेश की निवृत्तिपूर्वक परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष के लिए तप किया। 'यस्य ज्ञानमयंतपः' 'जिसका यह ज्ञान ही तप है' इस श्रुति के अनुसार उसने ज्ञान अर्थात् विचार का ही तप किया। उन्होंने ज्ञान दृष्टि से विचार किया कि इन लोकों के अधिष्ठाता कौन हैं? तो ज्ञात हुआ कि भूः लोक (पृथिवी) का अधिष्ठाता अग्नि, भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) का वायु और स्वर्लोक (स्वर्ग) का सूर्य। फिर विचार किया कि इन देवों में कौनसी शक्तियाँ हैं, जिनसे इन्होंने इन लोकों का धारण किया है? तो अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद तथा सूर्य से सामवेद प्रकट हुआ। पुनः उसने विचार द्वारा ऋग्वेद से अकार, यजुर्वेद से उकार और सामवेद से मकार रूप सारतत्त्व निकाला। जब इन अक्षरों में सारशक्ति ढूँढ़ने लगा तो अकार में भूः व्याहृति, ऋग्वेद, अग्नि देवता तथा नीचे के सातों लोक अतल, तलातल, वितल, सुतल, रसातल, महातल और पताल इन्हें सकल जीवों के सहित देखे। जब उकार में ढूँढ़ी तो भुवः व्याहृति यजुर्वेद,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वायु देवता तथा मध्य के सकल जीव देखे। और जब मकार के प्राण को ढूँढ़ने लगे तो उसमें स्वः व्याहृति, सामवेद, सूर्य देवता तथा ऊपर के सातों लोक (भूः, भुवः, स्वः, मह, जन, तप और सत्य) इन्हें इनके निवासी समस्त प्राणियों के साथ देखे। इस प्रकार अ, उ और म के अन्तर्गत हो अखिल ब्रह्माण्ड स्थित दिखलाई दिये। अ, उ और म ये तीनों मिल कर 'ॐ' ऐसा होता है। तब ब्रह्माजी ने समझा कि यह ॐकार हो ब्रह्म है। यह ही सकल जगत् में ओत-प्रोत है और यह ही सर्वाधिष्ठान एवं सच्चिदानन्द स्वरूप है, अतः इसी की उपासना से प्राणी निखिल क्लेशों से मुक्त हो सकते हैं। अस्तु—

एक समय प्रजापति पुत्र देवता, 'इस प्रणव की उपासना किस प्रकार की जाय ? ऐसा विचार कर वे उसे नेत्रों द्वारा देखकर उपासना करने लगे, तब असुर (बुरे विचार) नेत्रों में प्रवेश कर गये। इसलिए नेत्र पहले अच्छे ही पदार्थ देखते थे, सो अब वे बुरे भी देखने लगे अर्थात् नेत्रवृत्ति पदार्थों में अनुकूलता एवं प्रतिकूलतापूर्वक रागद्वेष की सृष्टि करने लगी, क्योंकि कोई भी पदार्थ स्वरूप से भला अथवा बुरा नहीं होता, प्रत्युत बुद्धिवृत्ति ही भला-बुरा की सृष्टि रचा करती है। अस्तु— जब वे स्पर्श द्वारा उपासना करने लगे तो असुर (बुरे विचार) आकर त्वचा में भी प्रवेश कर गये, अतः त्वचा भी बुरे पदार्थों का स्पर्श करने लगी। जब वे सूँघ कर उपासना करने लगे तो असुर आकर घ्राण (नाक) में भी प्रवेश कर गये, तबसे घ्राण बुरे विषयों को भी सूँघने लगा। फिर वे जब इसे श्रवण कर उपासने लगे, तब असुर आकर श्रोत्र में प्रवेश कर गये, तबसे श्रोत्र बुरे विषय भी सुनने लगे। जब वे इसकी स्मरण द्वारा उपासना करने लगे तो असुरों ने आकर मन को भी विद्ध दिया, जिससे मन बुरे-बुरे संकल्प करने लगा। जब वे प्राणों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

द्वारा उपासना करने लगे तो असुर वाणी में भी प्रवेश कर गये, जिससे वाणी झूठ और सत्य दोनों प्रकार से बोलने लगी। इस प्रकार हे शिष्य! इन्होंने जिन-जिन इन्द्रियों से इस प्रणव की उपासना करना आरम्भ किया, उन-उन इन्द्रियों में असुरों (बुरे विचार) ने प्रवेश कर उपासना में विघ्न कर दी और यथार्थ उपासना न होने दी। तब उन्होंने प्राण के द्वारा इस ॐकार की उपासना करना प्रारम्भ किया, तब तो असुर ऐसे तितर-बितर हो गये जैसे दृढ़ वृक्ष पर मारा हुआ मिट्टी का ढेला चकनाचूर होकर जहाँ-तहाँ बिखर जाता है। तब वे मुख द्वारा ही इसकी उपासना करके परम विश्राम को प्राप्त हुए। इसलिये हे सौम्य! जिनका मन और इन्द्रियों पर पूरा अधिकार नहीं है, ऐसे चंचल चित्तवाले पुरुषों के लिए प्राण द्वारा ही इस प्रणव की उपासना करना श्रेष्ठ माना गया है। (छा० १।२)

हे शिष्य! यह ॐकार महावाक्य है, अतः इससे तत्त्वज्ञान होकर मोक्ष हो जाता है। इसमें जो अकार, उकार और मकार, ये तीन मात्राएँ कही गयी हैं, सो इनमें से अकार का वाच्यार्थ समष्टि स्थूल उपाधिवाला विराट है और लक्ष्यार्थ उसका अधिष्ठान शुद्ध-चेतन है। उकार का वाच्यार्थ समष्टि सूक्ष्म उपाधिवाला हिरण्य गर्भ है और लक्ष्यार्थ उसका अधिष्ठान शुद्धचेतन है। ऐसे ही मकार का वाच्यार्थ समष्टि कारण उपाधिवाला ईश्वर है और लक्ष्यार्थ उसका अधिष्ठान शुद्धचेतन है। अब भागत्याग लक्षणा द्वारा इन स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण उपाधियों से युक्त वाच्यर्थ का त्यागकर देने पर शेष जो लक्ष्यार्थ रूप शुद्धचेतन रह जाता है, वही मैं हूँ—ऐसा चिन्तन करे। समष्टि में व्यष्टि का समावेश हो जाता है, अतः उसे पृथक् नहीं कहा गया। अस्तु, अथवा अ, उ और म मिल कर जो ॐ होता है, उसका वाच्यार्थ चेतन के

Rajguru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहित स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण रूप यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है और ब्रह्माण्ड का बाध करके जो शुद्धचेतन शेष रहता है, वह लक्ष्यार्थ रूप परम तत्त्व मैं हूं—ऐसा चिन्तन करे।

श्रुति में एक दूसरे स्थल पर पाया जाता है कि जो उपासक इस महामंत्र की प्रथम मात्रा अकार की उपासना करता है, वह शरीरान्त होने पर भूलोक (पृथिवी) को जीत लेता है। उस समय ऋग्वेद की ऋचाएँ उस पुरुष को बड़े स्वागत के साथ शीघ्र ही इस पृथिवी लोक में पहुँचा देती हैं, वहाँ वह तप, ब्रह्मचर्य तथा श्रद्धा से युक्त होकर बड़ी भारी महिमा का अनुभव करता है। यहाँ ऋचाओं से मतलब ऋचाओं के अधिष्ठाता देवताओं से समझना चाहिए। अस्तु। जो पुरुष इस मन्त्र के अकार और उकार इन दो मात्राओं की उपासना करता है, वह भूलोक (पृथिवी) और भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) इन दोनों लोकों का अतिक्रमण कर जाता है, अर्थात् जब उसका शरीर छूटता है तो उसे यजुर्वेद की ऋचाएँ अन्तरिक्ष में चन्द्र (स्वर्ग) लोक को पहुँचा आती हैं वहाँ वह उस लोक की विभूति को भोगकर पुनः लौट आता है। और जो उपासक अकार, उकार तथा मकार इन तीनों मात्राओं (पूरे ओंकार) की उपासना करता है, वह पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग इन तीनों लोकों का अतिक्रमण करता है, अर्थात् शरीरान्त होने पर उसे ऋग्वेद यजुर्वेद की ऋचाएँ अन्तरिक्ष (स्वर्ग) में और सामवेद की ऋचाएँ स्वर्ग से ऊपर ब्रह्मलोक में पहुँचा आती हैं। इस प्रकार वह उपासक पुरुष प्रणवोपासना के बल से सकल ब्रह्माण्ड का उत्क्रमण कर ब्रह्म (सत्य) लोक में पहुँच जाता है। वहाँ वह त्रिलोकविजेता पुरुष ब्रह्मतत्त्व का अनुभव कर अपने सर्वात्म-पद में स्थित होता है; वहाँ वह निरतिशय सुख का भान करता तथा फिर कभी भी दुःख का स्वप्न नहीं देखता है। (प्र० ५)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हे प्रिय ! अति गुह्य से भी गुह्य यह प्रणवोपासना मैंने आज तुमसे कही । यह प्रणवोपासना महात्माओं का गुप्त धन तथा प्राण प्रिय है । इसे अनाधिकारियों के प्रति कदापि नहीं कहना चाहिये, क्योंकि किसी काल में ब्राह्मणों के प्रति ब्रह्म विद्या का शाप हुआ है कि—"हे ब्राह्मणों ! मुझे अनाधिकारियों के प्रति कथन करके वेश्या न बनाना, प्रत्युत मुझे अधिकारी के ही प्रतिपादन कर सौभाग्यती—सती शिरोमणि-साध्वी के समान रखना । यदि तुम मेरी वाणी का अनादर कर अनधिकारी के लिए मुझे प्रदान करोगे तो तुम्हारी विद्या वन्ध्या स्त्री की तरह निष्फल हो जायेगी, जिससे आत्म-विस्मृति होकर वार-वार जन्म मरण रूप क्लेश का अनुभव करोगे ।"

प्रश्न—हे दयालु गुरो ! ब्रह्मविद्या का अधिकारी कौन है ?

उत्तर—जो मन तथा इन्द्रियों को वश में करनेवाला, आलस्य और प्रमाद से रहित, गुरु और शास्त्र में श्रद्धा तथा विश्वास रखनेवाला, किसी की चुगुली न करनेवाला एवं वैराग्यवान् हो, वही इस ब्रह्मविद्या का अधिकारी है । इससे विपरीत लक्षणों-वाले पुरुषों को अनधिकारी समझना चाहिये । इस प्रकार कह कर वे महात्मा मौन धारण कर स्थित हो गये ।

सातवाँ परिच्छेद

चेतन में उपाधिकृत अनेकता

शिष्य बोला:—

पुरुष अहंग्रह-ध्यान जो करने में असमर्थ ।
आत्मज्ञान की प्राप्तिमें, वे किमि होहिं समर्थ ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे भगवन्! "जो पुरुष अहंग्रह-उपासना के करने में असमर्थ हैं, वे आत्मज्ञान-प्राप्ति करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं?"

श्रीगुरु बोलेः-

जिनसे चित्त-चाञ्चल्य से, नहीं अहंग्रह-ध्यान।
उनको लय-चिन्तन किये, होय ब्रह्मका ज्ञान ॥ २ ॥

हे शिष्य! "चित्त की चपलता के कारण जिनसे अहंग्रहोपासना नहीं हो सकती, उन्हें लय-चिन्तन के करने से ब्रह्मज्ञान हो जाता है।"

महामते! लय-चिन्तन क्या कहलाता है?

सोम्य! यह सारी सृष्टि आकाशादि के क्रम से एक ब्रह्म से ही हुई है, अतः प्रत्येक कार्य को कारण में लय करते-करते अन्ततो गत्वा जो ब्रह्म रह जाता है, वही मैं हूँ, ऐसा चिन्तन करना ही लय-चिन्तन कहलाता है। श्रुति में कहा है:—

"तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधीभ्योऽन्नम् अन्नात्पुरुषः।" (तैत्तिरीय १।२)

"उस ब्रह्म से आकाश हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधि से अन्न और अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ।"

इस प्रकार शरीर और संसार में जितने भी कठिन पदार्थ हैं, वे पृथिवी के, रस वाले (द्रवीभूत) जल के, उष्ण अग्नि के, गतिशील (प्राणादि) वायु के और पोलापन आकाश के भाग हैं, अतः जिन भूतों के जो भाग है, उनको उन भूतों में लय-चिन्तन करे अर्थात् उनका ही रूप समझे। तदनन्तर पृथिवी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आकाश में और आकाश को ब्रह्म में लय करके, फिर ऐसा चिंतन करे कि 'वह अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं।' हे सोम्य! इस लय-चिन्तन की प्रक्रिया में न तो आत्मा आदि के पादों के ज्ञान की आवश्यकता है, न उन पादों की एकता को समझने की जरूरत है और न पादों को पादों में लय करना ही है, प्रत्युत यह सारी खटपट छोड़कर केवल भूतों के कार्य को भूतों में और भूतों को एक दूसरे में लय करके अन्त में सबको एक ब्रह्म में लयकर उसमें अभेद भाव से स्थित होता है, अतएव यह लयचिन्तन की प्रक्रिया अहंग्रह की प्रक्रिया से सुगम है।

शंकाः—

नित्य मुक्त निर्गुण यदा, निष्क्रिय अद्वय एक।
निर्विकल्प जब ब्रह्म है, तो किमि होत अनेक॥ ३॥
भासत वचन विरोध-सा, बिना संग नहिं खेल।
जो अनेक है एक किमि, यह सिद्धान्त अमेल॥ ४॥

हे प्रभो! "जब ब्रह्म नित्य, मुक्त, निर्गुण, निष्क्रिय, निर्विकल्प और एक ही अद्वितीय है तो वह [आकाशादि रूप से] अनेक कैसे हो जाता है? मुझे ये आपके वचन परस्पर विरोध से प्रतीत हो रहे हैं। बिना आसक्ति के तो बालक भी खेल नहीं करते। जो आकाशादि अनेक हैं, वे एक ब्रह्मरूप कैसे हो सकते? यह सिद्धान्त अमेल-सा प्रतीत हो रहा है।"

समाधानः—

अज्ञजनों के हृदय में, कारण-कार्य-प्रतीति।
कही बोधहित वेदने, कारण-कार्य-सुरीति॥ ५॥

हे प्रिय! "अज्ञानिजनों के हृदय में कारण-कार्य की भ्रांति अनादि काल से चली आ रही है (वे समझते हैं, जिस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ कारण के बिना कोई भी नहीं कार्य होता, कपड़े को जुलाहा सूतों से और घड़े को कुम्हार मिट्टी से बनाता है। वैसे ही इस जगत का भी कोई कारण अवश्य होना चाहिये) अतः उनके बोध के लिए वेद भगवान् ने यह कारण कार्य की सुन्दर रीति कही है।

तात्पर्य—यदि वेद भगवान् कृपाकर ब्रह्म को कारण नहीं बतलाते, तो अज्ञ पुरुषों को संतोष न होता और वे प्रकृति, परमाणु आदि में से किसी को कारण मान लेते और उससे वे महा अन्धकार को प्राप्त होते, उनकी जन्म मरण की फेरी नहीं छूटती एवं वे अशांत तथा संशयग्रस्त रह आत्यान्तिक सुख से वंचित रह जाते। अतएव जिसके चित्त म कारण-कार्य का भाव बैठा हुआ है, उन्हें सबका कारण ब्रह्म को मानकर उसकी उपासना करनी चाहिये। जब उपासना से उसकी प्राप्ति हो जायगी तो सारी शंकाएं अपने-आप नष्ट हो जायेंगी और यह कारण-कार्य का भाव निवृत्त हो जायेगा। तब तो यह समझ में आ ही जायेगा कि वस्तुतः ब्रह्म न तो किसी का कारण है, न कार्य।

यह जगत उस ब्रह्म में सर्वदा अपने-आप बनता-बिगड़ता रहता

मैं ही ब्रह्म हूँ, न तो मेरा जन्म है और न मृत्यु। यह बुद्धि-इन्द्रियादि का समुदाय मुझ आत्मा में स्वतः बनता और लय होता रहता है। मैं न तो कुछ करता और न करवाता हूं। सारा जगत् यों ही मन के संकल्प से स्वप्न सृष्टि के समान भास रहा है, वस्तुतः यह सब संकल्प के सिवा अन्य कुछ नहीं है। मैं शुद्ध हूं, बुद्ध हूं, मुक्त हूं, मन और वाणी से परे, अगोचर, अरूप, निर्मल, प्रकाश तथा आनन्द स्वरूप हूँ; मैं कुछ नहीं हूं और सब कुछ मैं ही हूँ इत्यादि-इत्यादि।"

शिष्य बोला—

मैं अखण्ड अद्वैत अज, बुद्धीन्द्रिय-तन नाहिं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहो ! महाआश्चर्य ! यह, जग भासत मम माहिं ॥६॥

"मैं बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर नहीं हूँ, बल्कि मैं अखण्ड, अद्वैत तथा अजन्मा हूं, परन्तु अहो ! महा आश्चर्य ! यह जगत् मुझमें भास रहा है।"

शुद्ध ब्रह्ममें सृष्टि को, कैसे वर्णत वेद ?
गुरुवर ! यह विस्तृत कहें, जिससे संशय-छेद ॥७॥

"हे आचार्य श्रेष्ठ ! वेद शुद्ध ब्रह्म में जगत् सृष्टि को किस रीति से कहता है ? [यद्यपि आपने पूर्व आकाशादि क्रम से सृष्टि कही है, तथापि] आप विस्तारपूर्वक कहें, जिससे मेरे संशय का छेदन (नाश) हो।"

महात्मा बोलेः—

जीवनकी कर्म-वासनासे युक्त एक सान्त,
माया सो अनादि सत-असत न मानिये।
ताहिसे आच्छादित अद्वैत ब्रह्म सृष्टि-पूर्व,
जीवनके भोगनसे प्रेरित बखानिये॥
'एकसे अनेक होऊँ, करिके संकल्प पुनि,
पंचतत्त्व रचि तासे चारि खानि जानिये।
तत्त्वनके सत्व से है हृद अरु ज्ञान इन्द्रि,
कर्मइन्द्रि-प्राण-तन, रज-तम मानिये ॥१॥

"[पूर्वकल्प के] जीवों की कर्मवासनाओं से युक्त जो माया रहती है, उसे एक, सान्त तथा सत् और असत् से भिन्न मानना चाहिये। सृष्टि के पूर्व [आरम्भावस्था में] ब्रह्म उस माया से आच्छादित था। वह ब्रह्म जीवों के पूर्वकल्प कृत कर्म भोगों से प्रेरित होकर 'मैं एक से अनेक हो जाऊं' ऐसा संकल्प

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करके आकाशादि पाँच तत्त्वों को उत्पन्न किया, फिर उन तत्त्वों से चार खानिमय सृष्टि की। उन भूतों के सतोगुण से हृदय (अन्तःकरण) और ज्ञानेन्द्रियों को तथा रजोगुण से कर्मेन्द्रियों और प्राणों को एवं तमोगुण से उत्पन्न हुआ ऐसा मानना चाहिये।"

एक ही सच्चिदानन्द घन ब्रह्म अपने-आपमें स्थित है। उसमें जगत् न तो कभी था, न है और न होगा। परन्तु अज्ञ पुरुषों को यह सृष्टि भास रही है, अतः वे इसका कारण ढूँढ़ते हैं। यदि ब्रह्मको कारण कहा जाय, तो वह विकारी मिथ्या एवं स्वप्न सृष्टि की कोटि में चला आयेगा, फिर विकारवान् पदार्थ कार्य होते हैं, तो कार्य ब्रह्म का कारण कौन होगा? जगत्, जीव आदि तो हो नहीं सकते, क्योंकि वे स्वयं कार्य हैं। अतः सृष्टि की मर्यादा रखने तथा ब्रह्मतत्त्व के जिज्ञासुओं के बोध निमित्त श्रुति, शास्त्र तथा आचार्य ने माया की कल्पना की है। उनका कथन है कि अघटित कार्य करनेवाली माया ब्रह्म में लुक-छिप कर सदा-सर्वदा रहती है। सृष्टि की प्रलयावस्था में सकल जीवों को उनके कर्मों के सहित अपने में लय कर ब्रह्म में अभेद भाव से स्थित रहती है और जब उन जीवों के कर्म फल परिपक्व हो जाते हैं, तो वह उस ब्रह्म की सत्ता से जागृत होकर सृष्टि की रचना करने लगती है। उस माया से युक्त ब्रह्म की सत्ता ईश्वर कहलाने लगती है। अतः यह सृष्टि ईश्वर कृत कही जाती है। ब्रह्म अपने सत्, चित्त रूप से माया में प्रतिबिम्बित होकर ईश्वर की संज्ञा में आ जाता है और उस माया उपाधिवाले ईश्वर से वह अपने को आच्छादित कर मानवी बुद्धि के ओट हो जाता है। अब तो प्राणी बस, माया-ही-माया, जगत्-ही-जगत् देखने लगते हैं। वह माया एक है, अतः उससे युक्त ईश्वर भी एक है। वह उत्पत्ति रहित होने से अनादि है तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनादि होते हुये भी ब्रह्म ज्ञानसे उसका अन्त हो जाता है, अतः वह सान्त कही गयी है। ज्ञान द्वारा उसका नाश हो जाता है, अत. वह असत् है और बिना ज्ञान के वह सत् सा हो रही है, इसलिए वह सत् भी है, क्योंकि असत् तो वन्ध्यापुत्र होता है, जिसकी प्रतीति कभी नहीं हो सकती। एक ही चीज सत् और असत् दोनों नहीं कही जा सकती, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि माया क्या है, अपितु यह सत् और असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय है इस माया के स्वरूप का वर्णन 'ज्ञानामृत' तथा 'विज्ञानशक्तिसुधा' में सविस्तार किया गया है।

वह मायाविशिष्ट ईश्वर पहले पहल 'एकोऽहं बहुस्याम्' 'मैं एक ही बहुत हो जाऊँ' इस प्रकार का संकल्प करता है, तब फिर विचित्र शक्ति वाली माया के बलसे प्रथम शब्द तन्मात्रा उत्पन्न होता है शब्द तन्मात्रा से आकाश, आकाशसे स्पर्श, स्पर्शसे वायु, वायुसे रूप, रूपसे अग्नि, अग्निसे रस, रससे जल, जलसे गन्ध और गन्धसे पृथिवी होती है। इस प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी—ये क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन तन्मात्राओं से उत्पन्न हुए हैं अतः ये तन्मात्राएँ इनके खास गुण हैं। तथा सद्रूप ब्रह्मका पहला कार्य आकाश है, अतः उसमें 'यह आकाश है' इस प्रकार ब्रह्म की सत्ता (अस्तित्त्व) प्रतीत होती है और अन्य तत्त्वोंसे अधिक शुद्ध एवं व्यापक भी है। इस तरह इसमें दो गुण हो जाते हैं—सत्ता रूप ब्रह्मका और शब्द अपना। वायुमें सत्ता, शब्द और स्पर्श ये तीन गुण हैं, इनमें वायुका केवल स्पर्श है। शेष दो उसके कारणरूप आकाश के हैं। अग्नि में सत्ता, शब्द, स्पर्श और रूप, ये चार गुण हैं। इनमें अग्नि का निज रूप ही है शेष उसके कारण रूप वायुके हैं। जल में सत्ता, शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये पाँच गुण हैं। इनमें जलका अपना केवल रस ही है, शेष चार उसके कारणरूप अग्नि

Rajguru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के हैं। ऐसे ही पृथिवी में सत्ता, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये छः गुण हैं। इनमें पृथिवी का अपना तो गन्ध ही है, शेष पाँच उसके कारणरूप जलके हैं।

चूंकि माया त्रिगुणात्मिका है और ये आकाशादि पाँचों भूत माया से बने हुए हैं, अतः इनमें भी रज, तम और सत्व, ये तीन गुण होते हैं। इसलिए इनसे भी आगे चलकर ईश्वरीय संकल्प से गुणमय सृष्टि होती है। ईश्वरीय संकल्प से आकाश के दो बराबर भाग हो जाते हैं। फिर उन दोनों में से एक के चार बराबर हिस्से होते हैं। इसी प्रकार शेष वायु आदिके भी पाँच पाँच भाग हो जाते हैं। पुनः वे प्रत्येक के छोटे चार हिस्से प्रत्येक के बड़े हिस्सों में मिल जाते हैं। इस भाँति पाँच पाँच भागों से युक्त पाँच समुदाय हो जाते हैं। प्रत्येक समुदायमें एक बड़ा भाग (आधा) प्रधानतत्त्व का अपना होता है, और शेष छोटे चार भाग अन्य भूतों के। इस विषयको इस दृष्टान्तसे स्पष्टतया समझना चाहिये। मान लो कि तुम पाँच मित्र हो और तुम्हारे पास एक-एक फल भिन्न-भिन्न प्रकारके हैं। तुम लोगोंने विचार किया कि हम लोग अपने फलों को परस्पर बाँट कर खायं, जिससे सबके फलों में से सबको मिल जाय। ऐसा विचार कर तुम लोग अपने फलों के दो-दो हिस्से करके आधे-आधे भाग अपने लिये इस हेतु से रखलिए कि वे फल तुम्हारे थे, तुम अपने फलके विशेष हिस्से खाना चाहते थे। शेष आधे के चार भाग करके अपने चारों मित्रों को एक एक दे दिये। इस प्रकार पाँचों के फलों में से पाँचों मित्र पा गये और उन प्रत्येक मित्रों के पास, एक बड़ा आधा भाग तो अपने फल का और चार छोटे-छोटे टुकड़े अपने अन्य चार मित्रों के दिये हुए, पाँच-पाँच भाग हो गये।

पूर्वोक्त प्रकारेण आकाशादि पाँच भूतों के तमोगुण भागोंके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंचीकरण पूर्वक स्थूल शरीर बन गया। इस स्थूल शरीर में कठिन धातु (हड्डी आदि) पृथिवी का अंश है, द्रव भाग (रुधिर, मूत्रादि) जल है, पाचन शक्ति अग्नि का अंश, गति वायुका तथा अवकाश आकाश का है। जैसेः—

पार्थिवः कठिनो धातुर्द्रवो देहे स्मृतोऽम्भयः।
पक्तिचेष्टावकाशः स्युर्वह्निवाय्वम्बरोद्भवाः॥

(उपदेशसाहस्री)

अस्तु—हे शिष्य! पूर्वकथित तत्त्वों के पाँचों समुदायों से पाँच-पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। जैसेः—आकाशवाले समुदाय से शोक, काम, क्रोध, मोह और भय। वायुवाले से चलन (चलना), वलन (वल लगाना), धावन (दौड़ना), प्रसारण (अंगोंका फैलाना) और आकुंचन (अंगोंको समेटना); अग्निवाले से क्षुधा, पिपासा, आलस्य तथा कान्ति; जलवाले से वीर्य, रुधिर, लार (कफ) पसीना और मूत्र; तथा पृथिवी-वाले से अस्थि, लोम, त्वचा, नाड़ी और मांस। यहाँ लोम में केश एवं हड्डी में नख का अन्तर्भाव है। और जिस समुदाय में जिस तत्त्व का बड़ा हिस्सा रहा, उस समुदाय से उत्पन्न हुई प्रकृतियाँ उसी तत्त्व की कही गई हैं। कहीं-कहीं तो आकाश से शिराकाश, कण्ठाकाश, हृदयाकाश, उदराकाश और कट्याकाश ये पाँच प्रकृतियाँ कही गयी हैं। इस प्रकार पाँच तत्त्वों के समोगुण से पंचीकृत सृष्टि (स्थूल पिण्ड और ब्रह्माण्ड) बनती है। और फिर भूतों के सात्विक और राजस अंशों से पृथक्-पृथक् अपंचीकृत सृष्टि होती है।* जैसेः—

---

* इन पंचीकृत और अपंचीकृत सृष्टियों का सविस्तार वर्णन 'प्रेम, वैराग्यादि वाटिका' में किया गया है और स्पष्ट समझने के लिए वहाँ चक्र भी बनाये गये हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी इनके सात्विक अंशों से क्रमशः श्रोत्र, नेत्र, रसना तथा घ्राण इन ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। इनके काम क्रमशः ये हैं:—श्रवण करना, स्पर्श करना, देखना, रस चखना और गन्ध ग्रहण करना। तथा इनके देवता भी क्रमशः ये कहे गये हैं:—दिग्पाल, वायु, सूर्य, वरुण एवं अश्विनीकुमार। इन्द्रियाँ जड़ हैं, अतः ये स्वतः काम नहीं कर सकतीं; ये चेतन देवताओं से प्रेरित होकर ही अपना अपना काम करती हैं। अस्तु—पाँचों तत्त्वों के मिश्रित सात्विकांश से अन्तःकरण हुआ, वह वृत्तियों के भेद से चार प्रकार का है, जैसे:—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। मन का काम मनन (संकल्प-विकल्प), बुद्धि का निश्चय (निर्णय), चित्त का चिन्तन (पूर्वअनुभूत विषय का स्मरण) और अहंकार का देहाभिमान करना है। तथा इनके देवता क्रमशः चन्द्रमा, बृहस्पति, वासुदेव तथा रुद्र हैं।

पुनः पूर्वोक्त तत्त्वों के राजस अंश से क्रमशः वाक् (मुख), हाथ, पैर, लिङ्ग और गुदा ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ होती हैं, इनके काम क्रमशः ये हैं:—बोलना, ग्रहण करना, मूत्र त्यागना तथा मल त्यागना और इनके देवता भी क्रमशः ये हैं:—अग्नि, इन्द्र, विष्णु, प्रजापति और यमराज। फिर पाँच तत्त्वों के मिश्रित राजसांश से प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान ये पाँच प्राण होते हैं।

सतोगुण से ज्ञान, रजोगुण से क्रिया तथा तमोगुण से न ज्ञान और न क्रिया ही होती है। पाँच भूतों के सात्विकांश से श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, अतः वे शब्दादि का पृथक्-पृथक् ज्ञान करती हैं, परन्तु अन्तःकरण तो पाँचों तत्त्वों के मिश्रित सात्विकांश से बना है. अतएव वह श्रोत्रादि इन्द्रियों से आये हुए पाँचों तत्त्वों के शब्दादि गुणों का ज्ञान करता है। कर्मेन्द्रियाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और प्राण रजोगुण से बने हैं, अतः वे केवल क्रिया ही करते हैं। जो मुख बोलेगा, वही श्रोत सुनेगा, क्योंकि ये दोनों शब्द गुणवाले आकाश से बने हैं। हाथ जिसको ग्रहण कर सकेंगे, त्वचा उसी का स्पर्श कर सकेगी, क्योंकि ये दोनों स्पर्श गुणवाले वायु से बने हैं। नेत्र जहाँ देख सकेंगे, पैर वहां गमन करेंगे, क्योंकि ये दोनों रूप गुणवाले अग्निसे उत्पन्न हुए हैं। जीभ जो रस ग्रहण करती है, उपस्थ (लिंग) वही त्यागता है, क्योंकि ये दोनों ही रस गुणवाले जल से पैदा हुए हैं और नाक गंध गुण का सेवन करती है तो वायु (गुदा) गन्धवान् मलका त्याग करती है, क्योंकि ये दोनों गन्ध गुणवाले पृथिवी से बने हैं। इस तरह इन्द्रियों का परस्पर सम्बन्ध है। अब प्राणों के काम और स्थान बतलाते हैं:—

श्वास-प्रश्वास लेत जो प्राणी।
जाते पचत अन्न अरु पानी॥
जलको स्वेद मूत्र जो करता।
जो रसादि शुक्रहिं अनुसरता॥ १ ॥
ताकर नाम 'प्राण' बतलावैं।
जो हृदय बीच सदा ठहरावैं॥
जो रसादि पाचनका कारण।
अग्नि-वृद्धि जो करता एहि तन॥ २ ॥
अरु मल-मूत्र बहिर्गत करई।
अंड कोष महँ शुक्र सुधरई॥
प्रेरित होहिं शिश्न, कटि जंघा।
जाते जानु उरू ये संघा॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोइ 'अपान' वायू कहलावै।
नाभि अधः महँ वास बतावै ॥
सहस बहत्तर नाडि अन्दर।
जो रसादि पहुँचावै सुन्दर ॥ ४ ॥
तुष्ट करै तन-स्वेद निकासै।
वायु 'समान' नाभि-परकासै ॥

कंठ कमर गर्दन सभी, नेत्र गुल्फ अरु कान।
इनके निचले भागको, प्रेरित करै 'विधान' ॥ ८ ॥
व्यान बसत सब अंगमें, कंठहिं बसै 'उदान'।
अरु प्रेरित सब सन्धिको, करत रहत कल्यान ॥ ९ ॥

पूर्वोक्त पाँच प्राणही कामोंके भेदसे नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय, ये पाँच उपप्राण भी कहलाते हैं, इनके काम ये हैं:—

संकोचन कर कूर्म नित, नाग करै उद्गार।
निद्रा तन्द्रा आलसा, देवदत्त-व्यवहार ॥ १० ॥
क्षुधा-तृषा इस देह में, कृकल देत उपजाय।
पोषण करै धनंजया, काया में सरसाय ॥ ११ ॥

हे शिष्य ! पूर्वोक्त प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान, ये ही पाँच प्राण मुख्य हैं, इसलिए उपनिषदोंमें इन्हीं की चर्चा की गयी है। इनमें प्राण का मुख्य काम श्वास-प्रश्वास लेना ही है, अपान का मल-मूत्र का बाहर करना, व्यान का सूक्ष्मसे लेकर स्थूल नाड़ियों तक सबमें रहकर सबको प्रेरित करते रहना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बोझा उठाने, तैरने, गाने आदि में व्यानका ही वल समझना चाहिये; तथा रस, रक्तादि धातुओं को शरीर के हर एक नाड़ियों में बराबर-बराबर बाँट देना समान वायुका मुख्य काम है और मुखपर कान्ति झलकाना एवं मरणान्तमें प्राणियों को उनके पाप पुण्यानुसार नीच-ऊँच योनियों में पहुँचा देना उदान वायुका मुख्य काम है। (प्रश्नोपनिषद् ३।५-६-७)

शंका—भगवन्! उदान वायु प्राणियो को भली तथा बुरी योनियों में कैसे ले जाती है?

समाधान—हे महाभाग! जब प्राणियों का प्रारब्धभोग समाप्त होकर शरीर छूटने लगता है तव उस मरणासन्न अवस्था में इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो जाती है और शरीर में हजारों विच्छूओं के डंकों की वेदना होने लगती है, मानो शरीर में सर्वत्र ही सूइयाँ चुभ रही हों। तव प्राणी मूर्छित हो जाते और किसी को पहचान नहीं सकते। फिर अपान वायु कटि से लेकर पैर पर्यन्त अपने स्थान को छोड़कर पेट में आकर समान वायु में मिल जाती है, अतः नीचे के पैरादि पहले ठंडे पड़ जाते हैं, पुनः व्यान वायु भी सम्पूर्ण नाड़ियों को छोड़कर समान में आ मिलती है, तव सकल शरीर जड़ी भूत होकर चेतनाहीन-सा प्रतीत होने लगता है। तदन्तर समान वायु उन दोनों वायुओं को लेकर प्राण में मिल जाती है, तव प्राण सिर्फ मुख से हृदय तक चलता रहता है और उतनाही हिस्सा गर्म भी रहता है। इसके वाद कुछ काल तक ऊर्द्ध्व श्वास चलता रहता है, तत् पश्चात् एक वार बड़े जोरों से हिचकी आती है और उन प्राणादि वायुओं को लेकर उदान वायु उन प्राणियों की वासना एवं कर्मानुसार उन्हें अच्छी-वुरी योनियों में पटक देती है।

श्रुति में कहा है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"स यत्कामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति
तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते"

"वह पुरुष जैसी कामनावाला होता है, वैसा ही संकल्प वाला भी होता है और जिस प्रकार का संकल्पवाला होता है, वैसा ही कर्म करता है तथा जैसा कर्म करता है, वैसा ही [आयु, जाति एवं भोगरूप] फल प्राप्त करता है।" अस्तु।

उन प्राणों के साथ-ही-साथ अन्तःकरण और इन्द्रियाँ भी मिलकर चली जाती हैं। वहाँ उस शरीर में पहुँचकर प्राण, इन्द्रियादि अपने-अपने स्थान एवं गोलकों में स्थित होकर पुनः अपना-अपना काम करने लगते हैं। शरीर से प्राणवियोग होते ही प्राणी मूर्छा से जागृत होकर उस दूसरे नवीन शरीर को देखने लगता है। इस प्रकार उदान प्राणियों को एक शरीर से दूसरे शरीर में ले जाता है। इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण मिलकर सूक्ष्म शरीर कहलाता है। स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का निकल जाना ही मृत्यु और पुनः उसका स्थूल शरीर को प्राप्त हो जाना जन्म कहलाता है। आत्मा न जन्मता है और न मरता है। अस्तु।

हे सोम्य! इस प्रकार ईश्वर के सत्य संकल्प से पंच सूक्ष्म भूतों के सात्विक और राजस अंशों से सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल पंच महाभूतों के तामस अंशों से स्थूल शरीर की उत्पत्ति समझनी चाहिये। सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म है, अतः उसकी उत्पत्ति सूक्ष्म तत्त्वों से तथा स्थूल शरीर स्थूल है, अतः उसकी उत्पत्ति स्थूल भूतों से माननी युक्तियुक्त ही है। पंच महाभूत जड़ हैं, अतः उनसे स्वतः सृष्टि नहीं हो सकती। उनमें जो ब्रह्म की सत्ता का वर्णन है, उसी चेतन सत्ता के प्रभाव से उन भूतों से सृष्टि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती है। इस प्रकार पंचीकृत (स्थूल) और अपंचीकृत (सूक्ष्म) सृष्टि द्वारा अखिल पिण्ड और ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड परस्पर एक दूसरे से बँधे हुए हैं। इस ब्रह्माण्ड में अण्डज, पिण्डज, उष्मज तथा स्थावर, ये चार खाने होती हैं। जिनकी अंडे से उत्पत्ति हो, वे अण्डज कहलाते हैं; जैसे पक्षी, मछली, कच्छपादि। जो जेर (जरायु झिल्ली) के अन्दर से पैदा हो, वे पिण्डज: जैसे मनुष्य, पशु आदि। शरीर के मैल, पसीने आदि से उत्पन्न होनेवाले जूं, चीलर खटमल इत्यादि उष्मज; और पृथिवी फोड़कर निकलने वाले वृक्ष, लता, वनस्पति आदि स्थावर कहलाते हैं।

शंका—हे भगवन्! पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता कैसे है, तथा ये परस्पर कैसे बँधे हुए हैं?

समाधान—हे प्रिय! पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों पंचतत्त्व से बने हैं और इनमें पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं दिखलाई देता, तथा इन दोनों में एक ही ब्रह्मसत्ता स्थित है, अतः दोनों में समानता है। और जैसे इस शरीर में सिर, नेत्र, श्रोत्र, धड़, मूत्राशय, पैर आदि अंग हैं, वैसे ही ब्रह्माण्ड में भी स्वर्ग, सूर्य, आकाश, वायु समुद्र पृथिवी, आदि, ये क्रमशः शिरादि अंग हैं। तथा ये दोनों परस्पर इस तरह बँधे हैं:—

विचार करके देखिए तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के सिवा जगत् दूसरा है ही क्या? इन शब्दादि के निकाल देने पर जगत् रह ही कहाँ जाता है? और इन शब्दादि की उत्पत्ति श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियों से होती है। यदि श्रोत्रादि इन्द्रियाँ बहिर्मुख न हों, अपने व्यवहार बाहर न करें तो शब्दादि का अस्तित्व कहाँ रह जाता है? शब्दादिमय जगत् का अस्तित्व तो ज्ञानेद्रियाँ ही देती हैं। यदि कहो कि श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

को बन्दकर लेने पर बाहर जगत् तो रहता है, परन्तु वह दिखलाई नहीं देता तो हम कहेंगे कि यह भी मन की कल्पना है। इनके न रहते हुए भी बाहर भीतर रूप देश तथा जगत् की कल्पना मन ही कर रहा है। तुम उसकी कल्पना रूप क्रिया को रोक दो फिर तुम देखोगे कि जगत् की गन्ध तक न रह जायेगी। संसार ही नहीं, वरन पिण्ड भी न रह जायेगा, क्योंकि स्थूल शरीर भी तो शब्दादि गुणयुक्त पृथिव्यादि पाँच भूत ही हैं। तथा शब्दादि ग्रहणरूप व्यवहार को छोड़ देने पर श्रोत्रादि इन्द्रियाँ भी कहाँ रह जायेंगी ? एवं कल्पना का त्याग कर देने पर मन भी नहीं रह जायेगा, क्योंकि कर्ता का क्रिया से भिन्न स्वरूप नहीं होता। जब सुषुप्ति में इनके व्यवहार बंद हो जाते हैं, तब इनका भी पता नहीं रहता। इस रीति से पिण्ड और ब्रह्माण्ड में एकता है। अथवाः—

जो संसार की यह पृथिवी न रहे, तो पैर किस पर चलेंगे ? इस शरीर को बाहर का आकाश ने ही तो अवकाश दिया है ? जो समुद्र नष्ट हो जाय, तो शरीर का मूत्राशय भी नष्ट हो जायेगा क्योंकि मेघ समुद्र से ही जल लेकर वर्षा करते हैं और उस वर्षा के जल से सभी रसयुक्त पदार्थ पैदा होते हैं तथा उन रसवाले पदार्थों के खाने-पीने से मूत्र की उत्पत्ति होती है और मूत्र से ही मूत्राशय है। इसी प्रकार यदि जगत् की वायु न रहे तो प्राणी श्वास नहीं ले सकते और श्वास के बिना शरीर का अंत हो है। फिर दिशाओं के बिना न शब्द की गति होगी और न श्रोत्र सुन सकेंगे। नेत्र भी तो सूर्य प्रकाश में ही देखते हैं। अग्नि, चंद्रमा, तारे आदि तो सूर्य के ही प्रकाश और उष्णता से प्रकाशित एवं उष्ण होते हैं, अतः इनके प्रकाश में भी देखना सूर्य प्रकाश में ही देखना कहा जायेगा। इस प्रकार से भी शरीर और संसार परस्पर सम्बन्ध सूत्र से बँधे हुए हैं। शास्त्र में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्माण्ड के अवयवों को अधिदैव और पिण्ड के अवयवों को अध्यात्म कहा गया है।

तीन अवस्था देह त्रय, पाँच कोश से युक्त।
नहिं जानत यह आत्मा, जिनकों निर्गुण मुक्त ॥१२॥

हे शिष्य! "तीन देह, पाँच कोश और तीन अवस्थाओं से युक्त हुआ यह आत्मा अपने को निर्गुण तथा मुक्त नहीं जानता।"

पूर्वोक्त पंचीकृत स्थूल भूतों के तमोगुण-अंश से उत्पन्न हुआ पच्चीस तत्त्वों का तो स्थूल शरीर है; तथा अपंचीकृत सूक्ष्म भूतों के सात्विक और राजस अंशों से पैदा हुए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण एवं मन और बुद्धि, इन सत्रह तत्त्वों के समुदाय को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यहाँ मनमें चित्त का और बुद्धि में अहंकार का समावेश है। तथा इन दोनों शरीरों का कारण रूपा जो अनादि अनिर्वचनीया अविद्या है, वही कारण शरीर कही जाती है। जभी नित्य मुक्त, असंग एवं निर्गुण आत्मा में अविद्या का आरोप हुआ, तभी से यह पुरुष सूक्ष्म, स्थूल रूप अनेक शरीर तथा सृष्टियों को देखने लगा और उनमें अहंता-ममता को इतना दृढ़ कर दिया कि यह अपने वास्तविकता को बिल्कुल भूल गया। इस रीति से सर्व अनर्थों का मूल कारण एक अविद्या ही है, अतः इसे आत्मा का कारण शरीर कहते हैं।

इन तीन शरीरों में अन्नमय, प्राण मय, मनोमय, विज्ञान-मय और आनंदमय ये पांच कोश रहते हैं। कोश कहते हैं म्यान को। अथवा कोश रेशम के कोये को कहते हैं, जिसे कोशकार नाम का कीड़ा बनाता है। जिस प्रकार म्यान के अंदर छिपी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुई तलवार नहीं दिखलाई देती, अथवा जैसे वह कोशकार कीड़ा उस कोश (कोया) को अपने ही बनाकर उससे बद्ध हो जाता है, वह उसके अंदर से निकल नहीं सकता, वैसे ही यह आत्मा अपनी अज्ञानता से पाँच कोशों को रचकर इसमें फँस गया है। इन कोशों के मध्य में छिपा आत्मा अज्ञानी जीवों को दिखलाई नहीं देता; वे जहाँ भी देखते, वे कोश ही कोश दृष्टि आते हैं। इनमें स्थूल शरीर ही अन्नमय कोश कहलाता है, क्योंकि यह माता-पिता के खाये हुए अन्न के परिणाम भूत रज वीर्य से उत्पन्न होता है, तथा खान-पान रूप अन्न से ही बढ़कर मृत्यु होने पर यह अन्न में ही लय हो जाता है। मृत शरीर की कीट, वीट तथा भस्म, ये तीन गतियाँ होती हैं। गाड़ देने से इसे कीड़े चुन जाते हैं, फेंक देने पर भी मछली, श्वान, श्रृंगाल एवं गृद्धादि खाकर विष्टा कर देते हैं तथा जला देने पर यह भस्म हो जाता है। जब कीड़े चुनते तो कीड़ों के अन्नमय स्थूल शरीर में मिलकर यह शरीर अन्न ही हो जाता एवं विष्ठा और भस्म होने पर पृथिवी में मिलकर अन्न ही हो जाता है, क्योंकि प्राणियों की भोग्या होने से यह पृथिवी भी अन्न ही है; कितने प्राणी तो प्रत्यक्ष मिट्टी खाते हैं।

अन्नमय कोश के भीतर दूसरा पाँच कर्मेन्द्रियों के सहित पाँच प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान) ही प्राणमय कोश है। कर्मेन्द्रियाँ और प्राण, ये दोनों ही भूतों के रजोगुण के कार्य हैं, अतः ये समान श्रेणी के हैं तथा प्राण अनुचर की भाँति कर्मेन्द्रियों से काम करवाता है। अतः इसकी प्रधानता है और सुषुप्ति में सम्पूर्ण इन्द्रियों के लय हो जाने पर भी यह शरीर में व्याप्त होकर श्वास-प्रश्वास द्वारा स्थूल शरीर की रक्षा करता रहता है। इसी के निकल जाने पर यह शरीर मृतक एवं अमंगलरूप हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे शिष्य! प्रश्नोपनिषद में वर्णित है कि एक समय समस्त इन्द्रियाँ मिलकर, इस बात के निर्णय के लिए, कि हम लोगों में कौन श्रेष्ठ है, प्रजापति के पास गयीं। *प्रजापति ने कहा—जिस एक के निकल जाने से तुम सभी निकले-से हो जाओ और शरीर अमंगल-सा प्रतीत होने लगे, तो जानना कि वही श्रेष्ठ है। इस प्रकार प्रजापति का वचन सुनकर नेत्र इस स्थूल शरीर से निकलकर एक वर्ष के बाद फिर वापस आकर इन्द्रियों से पूछा—तुम लोग हमारे बिना कैसे रहे? उन्होंने उत्तर दियाः—जैसे अन्धा रहता है। फिर वाणी निकली और एक वर्ष के बाद आकर पूछाः—तुम मेरे बिना कैसे जीवित रहे? उन्होंने कहाः—जैसे गूंगा प्राणी रहता है। तब श्रोत्र निकला और एक वर्ष के पश्चात् आकर पूछाः—तुम मेरे बिना कैसे स्थित रह सके? उन्होंने कहाः—जैसे कोई बहरा जीता है। इसी तरह समस्त इन्द्रियाँ शरीर से बराबरी निकलकर एक-एक वर्ष पर्यन्त बाहर जा-जाकर लौट आयीं, तो भी शरीर अमंगल (मृतक) सा न हुआ, तब फिर जब प्राण निकलने लगा, तब तो सकल इन्द्रियों में खलबली मच गयी और वे व्याकुल होकर प्राण के साथ ही निकलने लगीं। तब वे प्रार्थना करने लगीं—हे प्राण! हममें तुम्हीं श्रेष्ठ हो, हम लोगों के तुम्हीं स्वामी हो, इस स्थूल शरीर से मत निकलो, तुम्हारे निकलने से हमारी स्थिति भंग होना चाहती है तथा धैर्य भी छूटा जा रहा है, तुम्हारे न रहने से हम क्षणमात्र भी नहीं रह सकती। इस प्रकार की अनेक प्रार्थना करने पर प्राण पुनः अपने स्थान पर स्थित हुआ, तब इन्द्रियाँ भी अपने

---

*यहाँ इन्द्रियों से मतलब इन्द्रियों के देवताओं से है, क्योंकि जड़ इन्द्रियों में विवाद का होना असंभव है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेष्ठपना का अभिमान छोड़कर अपनी-अपनी जगह स्थित हो गयी। हे सोम्य! इस उपख्यान से इन्द्रियों से प्राण की श्रेष्ठता सिद्ध होती है, इसीसे श्रुतियाँ प्राण की ब्रह्म रूप से उपासना करने को कहती हैं। (प्रश्न २)

इस प्राणमय कोश के भीतर ज्ञानेन्द्रियों के सहित मन मिलकर तीसरा मनोमय कोश है। मन और ज्ञानेन्द्रियाँ, ये दोनों भूतों के सात्विक अंश से बने हैं, अतः ये दोनों एक श्रेणी के हैं तथा मन श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्दादि विषयों का ग्रहण कराता और स्वयं भी करता है। हे महाभाग! यह मन ही बंधन और मोक्ष दोनों का कारण है। जब यह विषयासक्त होता है, तब तो बंधन का हेतु होता है एवं निर्विषय होने से यही मोक्ष का कारण बन बैठता है। जैसे श्रुति :—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥

(ब्रह्मविंदू २)

इस मनोमय कोश के भीतर ज्ञानेन्द्रियों के सहित बुद्धि ही चौथा विज्ञानमय कोश है। प्रथम यह मन श्रोत्रादि इन्द्रियों द्वारा जब शब्दादि विषयों का ग्रहण करता है, तब तो मनोमय कोश कहलाता है, और उस मन द्वारा आये विषयों के बारे में जब बुद्धि निश्चय (निर्णय) करने लगती है कि यह विषय सुखप्रद है या दुःखप्रद, अच्छा है या बुरा, मुक्तिदायक है अथवा बंधकारक? इत्यादि इत्यादि—तब वह विज्ञानमय कोश कहलाता है। पूर्वोक्त तीन कोशों से यह विज्ञानमय श्रेष्ठ है, क्योंकि शरीर में बुद्धि प्रधान मानी गयी है। जब तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुद्धि कार्याकार्य का यथार्थ निर्णय करनेवाली सात्विक होती है तब मन भी उससे प्रेरित हुआ इंद्रियों से सात्विक कार्य कराता है और वे सात्विक कार्य अंतःकरण की शुद्धि द्वारा आत्मज्ञान के हेतु हो जाते हैं, परंतु जब तो वह बुद्धि रजतम-ग्रस्त वासनात्मिक होती है, तब तो दुःखप्रद तथा अकल्याण-कर विषयों का ही निश्चय कर इंद्रियों द्वारा उन्हीं का कराने के लिये मन को प्रेरित किया करती है जिससे अंतःकरण मलिन होकर जीव अज्ञानान्धकार में ही सर्वदा पड़ा रहता एवं जन्ममरण की ठोकरें खाया करता है। कहा भी है :—

या मतिः सा गतिर्भवेत्।'

(अष्टावक्र गीता)

"जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है।" परलोक के विषय में बुद्धि का जैसा निश्चय होता है, वैसी ही गति होती है।

इस विज्ञानमय कोश के अंदर आनंदमय कोश रहता है। बुद्धि की प्रिय, मोद तथा प्रमोदरूप जो वृत्तियाँ हैं, वे सब मिलकर आनंदमय कोश कहलाता है। अपने इष्ट विषय को देखकर जो बुद्धि में उल्लास का तरङ्ग उठता है, वह प्रियवृत्ति तथा उस अनुकूल विषय की प्राप्ति होने पर जो बुद्धि में विशेष प्रसन्नता होती है, वह मोदवृत्ति एवं उसके भोगकाल में जो सुख मिलता है वही प्रमोद की वृत्ति कहलाती है
कि अनुकूल विषय की उपलब्धि में थोड़ी देर के लिये कामना का अभाव हो जाता है इससे बुद्धि एकाग्र हो जाती है। बुद्धि के एकाग्र होते ही उसमें आनंदस्वरूप आत्मा का आनंदाभास पड़ता है, तब बुद्धि उस आत्मा के आनंद-आभास कारण कर आनंदित हो जाती है, तब उस आनंदयुक्त बुद्धि को ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

आनंदमय कोश कहते हैं। सुषुप्ति अवस्था में सकल उपाधियों के निवृत्त हो जाने पर जब एक अविद्यारूप उपाधि रह जाती है, तब उस अविद्या में पड़े हुए आत्मानंद के आभास का जीव भोक्ता होता है, उस समय वह अविद्यायुक्त आत्मानंद का आभास ही आनंदमय कोश कहलाता है। यह सुषुप्ति का तथा जाग्रत् का वैषयिक आनंद क्षणमात्र के ही लिये रहता है, ज्योंही सुषुप्तिका भङ्ग हुआ अथवा चित्तवृत्ति में चंचलता आई कि आत्मानंद का आभास पड़ना बंद हो जाता है, परंतु आश्चर्य कि पुरुष अज्ञानवश इसी आनंदमय कोश को नित्य मानकर इसीके लिए रातदिन प्रयत्न में लगे रहते हैं और जिस नित्य आत्मस्वरूप का वह प्रतिबिम्ब होता है उसे भूले रहते हैं, उनको उसका ध्यान ही नहीं रहता। जब पुरुष पंचकोशमय आवरण को हटाकर उनमें से आत्मानंद को वैसे ही निकाल लेता है जैसे मनुष्य मूँज में से तूलके सहित सींक को निकाल लेता है, तब वह पूर्ण सुखी एवं अविद्या से मुक्त हो जाता है। (तै० ३)

हे गुरो! इस पंचकोशमय आवरण की निवृत्ति कैसे होती है?

हे प्रिय! इन पंचकोशों का मूलकारण अज्ञान है, अतः उस अज्ञान की निवृत्ति से इनकी निवृत्ति हो जाती है। यदि वह अज्ञान सत्य होता तो उसकी निवृत्ति कदापि नहीं होती, परंतु वह तो तेरे स्वरूप में झूठमूठ का ही प्रतीत हो रहा है। कल्पित वस्तु की सत्ता स्वतंत्र नहीं होती, प्रत्युत वह अधिष्ठान रूप ही होती है और अधिष्ठान के ज्ञान से उसकी निवृत्ति हो जाती है, जैसे रज्जु की कल्पित सर्पिणी, अपने अधिष्ठान रज्जु से भिन्न नहीं होती और रज्जु के ज्ञान से उसका अभाव हो जाता है; अन्यथा घंटा के बजने से वह भाग नहीं सकती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैसे ही हे शिष्य ! तेरा कल्पित अज्ञान करोड़ों कर्मों से निवृत्त नहीं हो सकता, अपितु अपने-आपके ज्ञान से ही निवृत्त हो सकेगा और उसके नष्ट होतेही पंचकोशों का आवरण नष्ट होकर आत्मानंद वैसे ही प्रकाशित होगा, जैसे मेघमंडल के नाश होने पर सूर्य प्रकाशित होता है, कहा भी है:—

"भ्रान्त्या प्रतीतः संसारो विवेकान्न तु कर्मभिः ।
न रज्ज्वारोपितः सर्पो घण्टाघोषान्निवर्तते ॥"

हे प्रिय ! यह नियम ही है कि द्रष्टा दृश्य से पृथक् होता है, जैसे घटका देखनेवाला घट से सर्वथा अलग रहता है, वह स्वयं घट नहीं होता। वैसे ही तू इन पाँचकोशों को 'मेरा शरीर, मेरे प्राण, मेरा मन, मेरी बुद्धि तथा मेरा ज्ञान' इस प्रकार सर्वदा अपने से भिन्न रूप से जानता रहता है, अतः तू इसका द्रष्टा इनसे सर्वदा अलग है। तू ये पाँचकोश नहीं है और न तो तेरे ये पाँचकोश हैं, प्रत्युत इन कोशों का द्रष्टा तू इनसे सदा पृथक् है ; ये तो अविद्याजनित पाँचभूतों के विकार मात्र मिथ्या हैं।

"घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः सर्वथा न घटो यथा ।
देहद्रष्टा तथा देही नाहमित्येव धारयेत् ॥"

(अपरोक्षानुभूति)

हे शिष्य ! यह पूर्वोक्त तीन शरीर युक्त पाँचकोशों की सृष्टि वेदान्त शास्त्र के अनुसार कही गयी है, अब सांख्यशास्त्र की पद्धति से सृष्टि का संक्षेपतः वर्णन सुनो—

सप्त 'प्रकृति अरु विकृति' ये, षोड़श तत्त्व 'विकार।'
'मूल प्रकृति' चौबीस पुनि, 'पुरुष' न प्रकृति-विकार ॥१३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"एक 'मूल प्रकृति' "सात प्रकृति और विकृति" (महतत्त्वादि) तथा "सोरह तत्त्व" विकार (इन्द्रियाँ और महाभूत) ये चौवीस तत्त्व हैं एवं [पचीसवाँ] जो 'पुरुष' है, वह न प्रकृति है, न विकृति।" सांख्यशास्त्र कहता है कि प्रकृति और पुरुष, ये ही दो मूलतत्त्व हैं। इनमें पुरुष असंग, निगु'ण एवं अनेक हैं और प्रकृति त्रिगुणात्मिक है। अर्थात् रज तम और सत्व, इन तीन गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। जब तक यह प्रकृति साम्यावस्था में रहती है अर्थात् जब तक तीनों गुण बरावर रहते हैं, तब तक कोई भी सृष्टि नहीं होती, परन्तु चेतन पुरुष के संयोग से जड़ प्रकृति में जब क्षोभ प्रकट होता है, तो उसके गुण न्यूनाधिक भाव में होने लगते हैं और जगत्सृष्टि वनने लगती है। चूंकि सारी सृष्टि प्रकृतिके परिणाम से ही वनती है, अतः यह सांख्य-सिद्धांत परिणामवाद कहलाता है। उस प्रकृति से पहले-पहल महतत्त्व (समष्टि बुद्धि) उत्पन्न होता है, जिसमें निखिल सृष्टि का ज्ञान रहता है। फिर उस महतत्त्व से अहंकार प्रकट होता है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति के कार्य होने से महतत्त्व और अहंकार, ये दोनों ही त्रिगुणात्मक होते हैं। पुनः उस अहंकार में एक वार सतोगुण का उत्कर्ष होता है, तब पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन ये ग्यारह विकार पैदा होते हैं, तथा जब एक बार तमोगुण का संचार होता है, तो शब्द, स्पर्श रूप, रस तथा गंध ये पंच सूक्ष्म भूत (तन्मात्राएँ) उत्पन्न होते हैं और उन पाँच सूक्ष्म भूतों से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी, ये पंच महाभूत प्रकट हो जाते हैं, इन्हीं को विशेष भी कहा जाता है।

इस पूर्वोक्त प्रकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन, ये ग्यारह सात्विक विकार (कार्य) तथा पंच महाभूत (विशेष) ये सोलह तत्त्व तो केवल विकार (कार्य),

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के श्रेणी में आ जाते हैं। क्योंकि इनसे आगे कोई सृष्टि नहीं हुई है। तथा महतत्व (महान्), अहंकार और पंच सूक्ष्मभूत, ये सात 'प्रकृति (कारण) एवं विकृति' (कार्य) की श्रेणी में आ जाते हैं, क्योंकि ये पैदा होते और करते भी हैं। ये पैदा होने से तो विकृति तथा पैदा करने के कारण प्रकृति कहलाते हैं। और मूल प्रकृति तो अनादि होने से किसी से पैदा नहीं हुई है, अतएव वह विकृति नहीं है, अपितु महतत्व के पैदा करने से वह केवल प्रकृति कहलाती है। तथा पुरुष न तो किसी से प्रकट होता है और न किसी को उत्पन्न ही करता है, अतः वह न प्रकृति है और न विकृति, वरन् वह निर्गुण असंग एवं उदासीन है।

पुरुष के बंध-मात्र में सिर्फ एक प्रकृति ही कारण है। जब तो वह अपने रजोगुण तथा तमोगुण की वृद्धि करती है तब तो पुरुष प्रकृति के इन खेलों में आसक्त होकर बन्धन को प्राप्त होता है और जब वह अपने सतोगुण को वृद्धि करती है, तो वह सात्विक बुद्धिवृत्ति से अपनी असंगता का अनुभव कर मुक्त हो जाता है, अथवा प्रकृति स्वयं अपनी छुटकारा प्राप्त कर लेती है। परन्तु वेदांतशास्त्र इन प्रकृति और पुरुष को स्वतंत्र न मानकर इन्हें एक ही ब्रह्म की दो विभूतियाँ मानता है।

न्यायशास्त्र का परमाणुवाद है। वह सारी सृष्टि परमाणुओं के संयोग से ही बतलाता है। उसका कथन है कि सृष्टि के पहले सब पदार्थों के परमाणु थे। जो जंगले, झरोखे आदि से सूर्य की किरणों में रजकण दिखलाई देते हैं उनमें से एक का साठवाँ भाग परमाणु कहलाता है। जैसे—

जालान्तरगते भानोर्यत्सूक्ष्मो दृश्यते रजः।
तस्य षष्ठितमो भागः परमाणुः स उच्यते॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर ईश्वर की इच्छा से वे परमाणु आपस में मिलने लगे। दो मिलकर द्व्यणुक और तीन मिलकर त्र्यणुक तथा चार मिलकर महान् हो गये। जब तक द्व्यणुक तथा त्र्यणुक के रूप में सृष्टि रहती है तब तक सूक्ष्म रूप से अव्यक्त रहती है, परंतु जब महान हो जाती है तो वह पृथिवी आदि के रूप में दिखलाई देने लगती है। यह तो हुई सृष्टि की रचना और जब ये ही परमाणु ईश्वरीय इच्छा से अलग अलग होकर अकेले रह जाते हैं तो प्रलय कहलाता है। इस प्रकार परमाणुओं का परस्पर संयोग सृष्टि और उनका वियोग ही प्रलय कहलाता है।

छांदोग्योपनिषद् के अध्याय ६ में दूसरे खण्ड से छठें खण्ड तक तेज, जल और पृथिवी इन तीन तत्त्वों से ही त्रिवृत्करण द्वारा सृष्टि मानी गयी है। वहाँ कहा है कि—इस शरीर में अन्नरूप पृथिवी का स्थूल परिणाम विष्ठा, मध्यम परिणाम मांस और सूक्ष्म परिणाम मन होता है। तथा जल का स्थूल परिणाम मूत्र, मध्यम परिणाम रुधिर एवं सूक्ष्म परिणाम प्राण होता है। वैसे ही तेजरूप घृतादि का स्थूल परिणाम हड्डी, मध्यम परिणाम मज्जा और सूक्ष्म परिणाम वाक् होता है। इसी प्रकार पिण्ड में और ब्रह्माण्ड में भी ये तीन तत्व देखे जाते हैं।

पुराणों में तो विष्णु, शिव, शक्ति तथा सूर्यादि देवताओं से सृष्टि मानी गयी है। जैसे पद्मपुराण में कहा है कि सृष्टि के पहले यह सारा जगत् एक महार्णव में निमग्न था। उस क्षीर समुद्र में श्री विष्णु भगवान् शेष पर शयन किये हुए थे। जब सृष्टि काल आया तो उन श्री विष्णु जी के नाभि से एक कमल निकला और उस कमल पर ब्रह्माजी प्रकट हुए। फिर उन्होंने श्री विष्णुजी से आदेश पाकर पहले नारद,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सनकादि मुनियों को मानसिक संकल्प से उत्पन्न किया। तदनंतर अपने शरीर से मनु-शतरूपारूप दम्पत्ति पैदा कर उन्हें मैथुनी संतति पैदा करने को आज्ञा दी, तब उनसे सम्पूर्ण सृष्टि पैदा हुई।

यजुर्वेद के पुरुष सूक्त के अध्याय में एक ही परमात्मा से युगपत् सारी सृष्टि की उत्पत्ति कही गयी है। वहाँ कहा गया है कि—उस परमात्मा से विराट, पृथिवी, यज्ञ, वेद, घोड़े, गो बकरी, मनुष्यादि प्रकट हो गये। इत्यादि श्रुति-शास्त्र एवं पुराणादि में अनेक प्रकार से सृष्टि पाई जाती है।

शंका—भगवन्! ये श्रुति-शास्त्रादि सृष्टि के विषय में परस्पर विरोध-कथन क्यों करते हैं? एक दूसरे से विरोध होने से ये सभी सिद्धान्त अप्रमाणित हो जायेंगे।

समाधान—हे महाभाग! वस्तुतः यह सृष्टि कुछ नहीं है। यह जगत् प्रतीतिमात्र मिथ्या है। यदि इसकी वास्तविकता होती, तो इसकी सिलसिला भी ठीक ठीक होती और सभी ग्रन्थ एक क्रम से प्रतिपादन करते। इसको तो स्वप्न सृष्टि के समान ही समझना चाहिये। जैसे कंठगत बाल से भी सूक्ष्म एक हिता नाम की नाड़ी होती है, तथा स्वप्नावस्था में मन जाग्रत् की वासनाओं को लिये हुए उसमें प्रवेश कर जाता है और वहाँ वह मन उस वासनाओं के संस्कारों के अनुसार एक विशाल जगत् खड़ा कर देता है। वहाँ देश, कालादि के बिना ही सृष्टि हो जाती है। उस अवस्था में गाय अपने बछड़े को पिलाती हुई दिखलाई देती है। अब विचारने की बात है कि वहाँ स्थान तो बाल से भी सूक्ष्म है उसमें गाय और बछड़े ठहर कैसे सकते? तथा वे दो-तीन मिनट की नींद में दिखलाई दिये। भला उनके लिए यह पर्याप्त समय कहाँ है? उनकी उत्पत्ति और वृद्धि के ... कई वर्षों की आवश्यकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होनी चाहिए। इस प्रकार स्वप्न के सारे पदार्थ बिना देश-काल के ही पैदा होते हैं, अतः वे मिथ्या कहे जाते हैं। तो भला, देश, कालादि से रहित "एकमेवाद्वियं ब्रह्म" एक ही अद्वितीय ब्रह्म में माया रचित ये सकल पदार्थ सत्य कैसे हो सकते ? स्वप्न में तो नाड़ीरूप कुछ स्थान तथा कुछ मिनट का समय भी है, परन्तु ब्रह्म में तो देश और काल का लेश भी नहीं है, क्योंकि ये देश, काल तो पैदा हुई सृष्टि ही हैं। देश, काल और वस्तु ये ही तो सृष्टि है। स्वप्न में भी दो प्रकार की सृष्टि प्रतीति होती है, एक क्रम से बनी हुई और दूसरी अक्रम (एकबारगी) से। इसी तरह जगत् भी श्रुति-शास्त्रों में क्रम और अक्रम, दोनों रूपों से वर्णित पाया जाता है।

जैसे बालक मनोविनोदार्थ मिट्टी के हाथी, घोड़े आदि खिलौने बनाते हैं तो यदि उनके कान, पूछ आदि टेढ़े भी रह जाते हैं, तो वे उन्हें सीधा नहीं करते, क्योंकि वे तो यह जानते ही रहते हैं कि खेल समाप्त होने पर फिर इन्हें बिगाड़ ही देना है, वैसे ही श्रुति-शास्त्रों ने जिज्ञासुओं के बोध के लिए इस संसार की रचना उलटे-सीधे किसी प्रकार कर डाली है, क्योंकि उनके कथन का तात्पर्य सृष्टि के अस्तित्त्व में नहीं रहता, प्रत्युत 'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्च प्रपञ्च्यते' 'प्रपंच के अध्यारोप और अपवाद के द्वारा ब्रह्म का प्रतिपादन किया जाता है' इस उक्ति के अनुसार वे सृष्टि को किसी प्रकार खड़ा करके फिर उसके निषेध द्वारा जिज्ञासुओं को बोध कराते हैं। विधि मुख से तो सारा जगत् ब्रह्म ही है और निषेधमुख से जो कुछ भी मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का विषय है, वह सब प्रतीति मात्र मिथ्या है, इसके तह में अधिष्ठान रूप से छिपा हुआ जो एक तत्त्व है, वही सत्य वस्तु ब्रह्म है, वही आत्मा है, वही सबका वास्तविक रूप है। इस जगत को देखकर मुमुक्षु पुरुषों को यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वाभाविक ही जिज्ञासा पैदा होती है कि यह जगत् कैसे बना? कहाँसे बना, और इसे किसने बनाया? इसपर यदि श्रुति-शास्त्र यह स्पष्ट कह डालते कि 'यह कुछ नहीं है, यह अनहुआ ही प्रतीत हो रहा है, इसे किसी ने नहीं बनाया', तो जिज्ञासु घबरा जाते और इस बात पर सहज में ही विश्वास कदापि नहीं होता; वे बोल उठते—अरे! यह संसार प्रत्यक्ष ही दिखलाई दे रहा है तथा इससे सुख-दुःख भी साक्षात् ही मिल रहे हैं, फिर यह कैसे माना जाय कि यह कुछ नहीं है, और बिना कारण के ही अपने-आप बना हुआ है। इसलिए श्रुतिशास्त्र पहले उनकी दृष्टि को उनके सामने रखकर जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से आरंभ कर फिर ब्रह्म में ही पर्यवसान करते हैं। जग की उत्पत्ति के विषय में विरोध भले ही हो, परंतु सबका तात्पर्य एक ब्रह्म में ही है। हाँ, उनके अभिप्राय किसी ब्रह्म निष्ठ महात्मा के द्वारा श्रवण-मनन करके समझना चाहिये।

जिस प्रकार अपने आप निकाला हुआ समुद्र का जल पीने में खारा लगता है और इस्तेमाल करने पर वह व्याधि का कारण बन बैठता है, परंतु वही जल मेघ मुख से निकाल कर बरसाने पर अन्न, वनस्पति, मनुष्य आदि सबके लिए अमृत तुल्य हो जाता है। वैसे ही स्वतंत्र विचार किये हुए श्रुति शास्त्र यथार्थ समन्वय न होने के कारण संशय, भ्रमादि के द्वारा क्लेश के ही हेतु होते हैं, परंतु ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के द्वारा विचार करने पर वे ही संशय विपर्यय के नाशपूर्वक परमानंद के कारण होते हैं। केवल कर्म और उपासना को तात्पर्य समझना तो उनका खारापन है, उससे जन्म-मरणादि के दुःख ही होंगे तथा अद्वैत ज्ञान ही उनका अमृत है। उससे अज्ञान की निवृत्तिपूर्वक आत्मानंद की प्राप्ति रूप मोक्ष प्राप्त होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रश्न—स्वामिन्! प्राणी अज्ञानवश इस संसार को सत्य एवं सुखरूप समझकर इसके भोगों की प्राप्ति निमित्त यज्ञ, दान तथा तपादि रूप कर्म और देव-देवी के पूजन रूप उपासनाएं करके जब सांसारिक भोग प्राप्त करता है तो वह उन्हें किन-किन अवस्थाओं में भोगता तथा उसकी कौन-कौन संज्ञाएँ होती हैं?

उत्तर—हे शिष्य! यह जीव इस संसार में अपने किये हुए कर्मों को जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में भोगता है। जिस समय श्रोत्रादि इंद्रियों से बाह्य जगत् के शब्दादि विषयों का स्पष्ट ग्रहण होता है, वह जाग्रदवस्था कहलाती है तथा जब नींद के आ जाने पर जाग्रदवस्था के देख सुने विषयों के संस्कार उभड़कर कंठगत सूक्ष्म नाड़ी में एक सूक्ष्म संसार के रूप में हो जाते हैं तो उसे स्वप्नावस्था कहते हैं और जब प्रगाढ़ निद्रा आकर स्वप्न देखना भी बंद हो जाता है तो वह सुषुप्ति अवस्था कही जाती है। इसका जागने पर 'अहं किमपि नैव जानामि' मया सुखेन निद्रानुभूयते" मैंने कुछ भी नहीं जाना किंतु मैंने सुखपूर्वक नींद का अनुभव किया। इस प्रकार उस बेखबरी की सुषुप्ति अवस्था की स्मृति होती है। चूंकि पूर्व अनुभूत विषय की ही स्मृति होती है इसलिए यहाँ सुख की स्मृति तो आत्मानंद के अनुभव का तथा कुछ नहीं जानने की स्मृति सर्वाभाव के अनुभव का सूचित है।

हे साध्य! यह जीवरूपी पक्षी अपने कर्म रज्जू से बंधा हुआ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग इन तीन लोकों में भ्रमण करता है। कभी कीट, पतंग, पशु, पक्षी आदि के तामसिक भोगों को भोगता है, कभी मनुष्य के राजस सुखों का उपभोग करता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो कभी देवताओं के सात्विक भोगों को प्राप्त करता है। इस प्रकार घटी यन्त्र की तरह लोक-लोकान्तरों के हरएक योनियों में भ्रमण करता रहता है। जैसे बन्दर इस डाली से उस डाली पर कूदता हुआ कभी भी स्थिर नहीं होता, उसी प्रकार यह नाना शरीरों में भटकता तथा जन्म, मृत्यु, जरा आदि दुःखों को भोगता हुआ कभी भी विश्राम नहीं पाता है।

जिस प्रकार पक्षी जब उड़ते-उड़ते थक जाता है तो वृक्ष पर आकर घोसले का आश्रय लेता है, वैसे ही जब यह जीव अपने जाग्रत् और स्वप्न के प्रारब्ध भोगों को भोगते-भोगते थक जाता है, तब हृदय के वृक्ष पर अज्ञानरूपी घोसले का आश्रय लेकर विश्राम करता है। यह सुषुप्ति सुख विशेष पुण्य का फल माना गया है। यहाँ जीव सकल दुःखों से छूट जाता है। यहाँ न राजा राजा रह जाता, न प्रजा प्रजा; न रोगी रोगी रह जाता, न भोगी भोगी और न मनुष्य मनुष्य रह जाता न देवता देवता। यहाँ पर सारी प्रजा एक आत्मा को प्राप्त हो जाती है। हाँ, प्राप्त तो हो जाता है, परन्तु अज्ञानतः। उस अवस्था में सकल अनर्थों की मूल कारण अविद्या शेष रह ही जाती है, उसीमें अनन्त जन्मों के कारण भूत जन्म-जन्मान्तरों के कर्म-संस्कार छिपे रहते हैं, अतः प्राणी उस आत्मानन्द को पहचान नहीं सकते और जाग्रत् या स्वप्न के भोगोदय होते ही उससे निकल आते हैं। यह कोई नियम नहीं है कि सुषुप्ति के बाद जाग्रत् या स्वप्न ही होता है अथवा जाग्रत् के बाद सुषुप्ति या स्वप्न ही होता है; जैसे-जैसे प्रारब्ध-भोग उदय होते रहते हैं, वैसी-वैसी अवस्थाएँ बिना क्रम के ही होती रहती हैं। जब अनेक जन्मों के पुण्योदय होने पर ईश्वर-अनुग्रह से सद्गुरु की प्राप्ति होकर ब्रह्मविद्या का लाभ होता है और उस विद्या के द्वारा अविद्या नष्ट हो जाती है, तब यथार्थ आत्मज्ञान होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है तथा उस आत्मज्ञान द्वारा प्राणी जन्म-मरणादि दुःखों से छूट जाते हैं (कैवल्योपनिषद् १।१२ से १६ तक)।

शिष्य बोला—

ज्ञान होत है वृत्ति को, अथवा चेतन माहिं।
भो भगवन् ! मुझसे कहो, समुझि परत मोहि नाहिं ॥१४॥

हे भगवन् ! मुझे यह समझ में नहीं आता कि ज्ञान वृत्ति को होता है, अथवा चेतन में, अतः आप मुझसे इस विषय में कहें ?"

तात्पर्य—जड़ होने के कारण वृत्ति को तो ज्ञान हो नहीं सकता, और चेतन को सर्वव्यापी तथा ज्ञानस्वरूप ही कहा गया है। यदि चेतन को ज्ञान परिणामवाला माना जायेगा, तो वह विनाशी हो जायेगा, क्योंकि परिणामी वस्तुएँ विनाश-शील होती हैं एवं जब सर्वव्यापी चेतन में ज्ञान होगा तो सर्वत्र सबका ज्ञान होना चाहिये।

श्रीगुरु बोलेः—

चेतन के संयोग से, होत वृत्ति को ज्ञान।
जिमि सूरज के रश्मि से, दर्पणमध्ये भान ॥१५॥

हे शिष्य ! "जैसे सूर्य के प्रकाश से दर्पण में भान अर्थात् प्रकाश होता है, वैसे ही चेतन आत्मा के संयोग से वृत्ति में ही ज्ञान होता है।"

भाव यह कि यद्यपि सूर्यप्रकाश सर्वत्र ही रहता है, तथापि उसका प्रतिबिम्ब दर्पणादि स्वच्छ पदार्थों पर ही पड़ता है; कोयला, मिट्टी आदि मलीन वस्तुओं पर नहीं। और जब वह दर्पणादि पर पड़ता है, तब उस दर्पणादि पर पड़ा हुआ प्रति-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विम्ब का प्रकाश जिस पदार्थ पर भी पड़ता है, उसको प्रकाशित कर डालता है। वैसे ही अन्तःकरण की वृत्ति भूतों के सात्विकांश से बनी हुई है, अतः स्वच्छ तो है, परन्तु उसमें प्रकाश नहीं है। परन्तु उस पर चैतन्यात्मा का प्रतिविम्ब पड़ा रहता है, इसलिए उसमें ज्ञानशक्ति होती है, जब वह किसी पदार्थ पर पड़ जाती है, तो उस अपनी ज्ञानशक्ति से उस वस्तु को जान जाती है। इस प्रकार वह ज्ञानस्वरूप चेतन वृत्ति में आरूढ़ होकर एक विशेष रूप धारण करता है और जिन-जिन वस्तुओं से वृत्ति का आवरण रहित संयोग होता जाता है, उन-उन चीजों को जानता जाता है। फिर जैसे वहाँ एक सूर्य ही वास्तविक होता है, दर्पणादि पर पड़ा हुआ सूर्य तो मिथ्या ही होता है, दर्पणादि के नाश होते ही उसका भी नाश हो जाता है, वैसे ही यहाँ एक समरस आत्मा ही सत्य वस्तु है, और वृत्ति पर पड़ा हुआ इसका प्रतिविम्ब मिथ्या है, वह तो वृत्ति के ही अस्तित्व से अपना अस्तित्व रखता है, वृत्ति के नष्ट होते ही इसका भी नाश हो जाता है। नाना वृत्तियों का कारण अज्ञान है और अज्ञान की निवृत्ति आत्मज्ञान से होती है।

चेतन और वृत्ति को लँगड़े और अन्धे के समान समझना चाहिये। वृत्ति तो पैरवाले के सदृश सर्वत्र पहुँच जाती है, परन्तु चेतनारूप आँख के न होने से उसे पदार्थों का ज्ञान नहीं हो सकता। तथा आत्मा चेतनारूप आँखवाला तो है, परन्तु निष्क्रियरूप पंगुता से युक्त है। जैसे पंगु और लगड़ा, ये परस्पर एक दूसरे के सहायक होते हैं, वैसे ही अन्धी वृत्ति पंगु चेतनाभास को अपने कन्धों पर लेकर जब पदार्थों तक पहुँचा देती है, तब वह उसे यथार्थ रूपेण जान जाता है। यह चेतन आत्मा अन्तःकरणादि चार उपाधियों से ही प्रमातादि चार संज्ञाओंवाला हो जाता है; वस्तुतः इसमें स्वरूपतः कोई भेद नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंका—हे महाप्राज्ञ! ये अन्तःकरणादि चार उपाधियाँ कौन हैं तथा इनसे प्राप्त हुई आत्मा को चार संज्ञाएँ कौन हैं ?

समाधानः—

अन्तःकरण-विशिष्ट 'प्रमाता'।
चिदाभास सोई विख्याता ॥

"अन्तःकरण पर पड़ा हुआ चेतन का प्रतिबिम्ब है, वही अन्तःकरण-विशिष्ट 'प्रमाता' कहलाता है और वही चिदाभास के नाम से भी विख्यात है।"

जो विषय न लगि वृत्त्यारूढ़ा।
कहहिं ताहि 'प्रमाण' अमूढ़ा ॥

"जब अन्तःकरण की वृत्ति नेत्रादि प्रमाणों के द्वारा विषयों (पदार्थों) तक पहुँच जाती है तो उस अन्तःकरण से पदार्थों तक पहुँची हुई वृत्ति में जो चेतन का प्रकाश (प्रतिबिम्ब) रहता है, उसे ज्ञानीजन 'प्रमाणचेतन' कहते हैं।"

विषय-वृत्ति के योग में, प्रमा होत उद्योत।
मेय विषय अवछिन्न जो, चेतन सोई होत ॥१६॥

"विषय और वृत्ति के संयोग में अर्थात् विषयाकार वृत्ति में जो चेतन का प्रकाशोदय होता है वह "प्रमाचेतन" तथा जो समान चेतन घट, पटादि पदार्थों से अवछिन्न है, वही "प्रमेय चेतन" (विषय चेतन) के नाम से होता है।"

भ्रमस्थल में जब अंतःकरण की वृत्ति नेत्र द्वारा बाहर निकलती है और वहाँ मार्ग में पड़ी हुई रस्सी जब मंद अंधकार के कारण स्पष्ट नहीं दीख पड़ती तो उस रज्जु उपहित चेतन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(प्रमेय) के आश्रित रहनेवाली अविद्या में क्षोभ होकर उसका तमोगुण अंश सर्पाकार हो जाता है। अतः उस कल्पित सर्प का अधिष्ठान रज्जूपहित चेतन ही है, रज्जु विशिष्ट चेतन नहीं; क्योंकि सारे कल्पित पदार्थों का उपादान कारण एक अज्ञान ही होता है और उस अज्ञान का अधिष्ठान एक शुद्ध चेतन। विशिष्ट चेतन तो स्वयं कल्पित होता है। अतः अधिष्ठान नहीं हो सकता। अस्तु। जब वह अविद्या का तम अंश सर्पाकार होता है तो इधर भी वृत्ति-उपहित साक्षी चेतन के आश्रित रहनेवाली अविद्या का सात्विकांश 'यह सर्प है' इस प्रकार ज्ञान के आकार का हो जाता है। 'यह रज्जु है' इस प्रकार के ज्ञान के द्वारा वह सर्प तथा उसका ज्ञान ये दोनों साथ ही नष्ट हो जाते हैं। अविद्या वृत्ति से भ्रांति ज्ञान और अंतःकरण की वृत्ति से यथार्थ ज्ञान होता है।

शंका—अधिष्ठान के ज्ञानसे ही कल्पित वस्तु की निवृत्ति होती है और यहाँ उस अविद्या के तमोगुण के परिणामरूप सर्प का अधिष्ठान रज्जु उपहित चेतन है, तब रज्जु के ज्ञान से उस सर्प की निवृत्ति क्योंकर होती है?

समाधान—यहाँ रज्जु के ज्ञानसे रज्जु उपहित चेतन का ही ज्ञान होता है क्योंकि वह चेतन उस रस्सी से वैसे ही भिन्न नहीं रहता है जैसे भूषण से स्वर्ण तथा तरंग से जल। रज्जु ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति तो स्थूल दृष्टिसे कही गयी है। जब दीपक आदि के प्रकाश द्वारा अंधकार दूर हो जाता है तो वहाँ पहुँची हुई अंतःकरण की वृत्ति तो उस रज्जु-उपहित चेतन के आश्रित आवरण रूप अज्ञान को नष्ट करती है और चेतन का आभास रज्जु को प्रकाशता है। आभास रज्जु को भले ही प्रकाशे, किंतु कल्पित वस्तु की निवृत्ति में केवल आवरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

निवृत्ति को ही आवश्यकता रहती है, सो यहाँ वृत्ति आवरण को दूर करती ही है। उस अज्ञानावरण के नष्ट होते ही उसका परिणामभूत सर्प की निवृत्ति हो जाती है।

अथवा जब वृत्ति को उस मंद अन्धकार में 'यह' रूपसे रस्सी के सामान्य रूप का तो ज्ञान होता है परंतु उसका मूँज का अवयव रूप विशेष ज्ञान नहीं हो पाता, तब वृत्ति उपहित चेतन के आश्रित अविद्या में क्षोभ होकर उसका तमोगुणांश सर्पाकार परिणाम को प्राप्त होता है और फिर उसी अविद्या का सात्विकांश ज्ञानाकार परिणाम को प्राप्त हो जाता है, तब ऐसा विपरीत ज्ञान होता है कि 'यह सर्प है'। और जब दीप आदि के प्रकाश से रस्सी का ज्ञान हो जाता है तो उस अविद्या के तम अंश के परिणामभूत सर्प की निवृत्ति हो जाती है तथा साथ ही वह सर्पज्ञान भी नष्ट हो जाता है।

शंका—हे भगवन्! आपके पूर्व कथन से मैंने यह माना कि रज्जु के ज्ञान के साथ-साथ रज्जूपहित चेतन का आवरण नष्ट हो जाता है और तब उस आवरण अविद्या के परिणामभूत सर्प की भी निवृत्ति हो जाती है, परन्तु इस दूसरी प्रक्रिया में तो इस कल्पित सर्प का तथा इसके ज्ञान का अधिष्ठान वृत्ति उपहित चेतन है, तब फिर रस्सी के ज्ञान से इसकी निवृत्ति कैसे होती है? इसकी निवृत्ति में वृत्ति-उपहित चेतन के ज्ञान की आवश्यकता होनी चाहिये, क्योंकि कल्पित वस्तु की निवृत्ति उसके अधिष्ठान से ही होती है।

समाधान—हे शिष्य! जब प्रकाश के पाते ही वृत्ति और रस्सी एकत्र होती हैं अर्थात् जब वृत्ति रज्जु के आकार की होती है, तो उस समय वृत्ति उपहित चेतन तथा रज्जु उपहित चेतन ये दोनों चेतन एक ही हो जाते हैं, अतः रज्जु उपहित चेतन के ज्ञान से वृत्ति उपहित चेतन के आश्रित अविद्याजनित सर्प की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निवृत्ति हो जाती है। कारण, चेतन में तो कोई भेद होता नहीं, यह भेद तो वृत्ति और रज्जुरूप उपाधियों के कारण वैसे ही हो जाता है. जैसे एक ही आकाश घट और मठरूप उपाधियों से घटाकाश तथा मठाकाश कहलाने लगता है। जैसे दोना उपाधियां के एक होते ही आकाश भी एक ही हो जाता है वैसे ही वृत्ति और रज्जु के एक होते ही दोनों के चेतन भी एक ही हो जाते हैं, अतः उस कल्पित सर्प का अधिष्ठान चेतन एक रहता है। यह तो हुई लौकिक भ्रमस्थल की वार्ता, अब परमार्थ के विषय में सुनो !

अज्ञान और अज्ञान जनित अहंकारादि निखिल प्रपंच का अधिष्ठान एक मात्र ब्रह्म ही है, अतएव उसके ज्ञान के द्वारा अज्ञान के निवृत्त होते ही अज्ञान जनित सकल प्रपंच की निवृत्ति हो जाती है। लौकिक भ्रमस्थान में वृत्ति को आभास की जरूरत रहती है अर्थात् जब प्रकाश के द्वारा अन्धकार दूर हो जाता है, तो वृत्ति का रस्सी से साक्षात् सम्बन्ध होकर वह वृत्ति रस्सी के आकार की हो जाती है और तब वृत्ति का आभास (वृत्ति आरूढ़ विशेष चेतन) उस रस्सी को प्रकाशित करता (जानता) है, क्योंकि वह रस्सी प्रकाश विहीन जड़ होती है, परन्तु परमार्थ के विषय में ऐसी बात नहीं है; वहाँ तो अधिष्ठान चेतन स्वतः प्रकाश स्वरूप ही है। जब अन्तःकरण की ज्ञानाकार वृत्ति रूप प्रकाश से अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है तो वह अन्तःकरण की वृत्ति उस प्रकाश स्वरूप चेतन से साक्षात् सम्बन्ध करती है अर्थात् वह उस चेतन ब्रह्म के आकार की हो जाती है, फिर तो उस वृत्ति में वह ब्रह्म वैसे ही भर जाता है. जैसे अग्नि से खूब तपाये हुए लोहे में वह अग्नि ओतप्रोत हो जाती है और फिर उस वृत्ति का प्रतिबिम्बित चिदाभास भी उसी महान् चेतन में वैसे ही घुल-मिलकर अभेदता प्राप्त कर लेता है, जैसे घट को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मठमें रखते ही उस घटाकाश और मठःकाश में अन्तर नहीं रह जाता। अथवा जैसे अग्नि में अग्नि, जल में ज़ल एवं दूध में दूध मिलकर एक हो जाता है। जैसे जबतक दर्पण आग को लपट से अलग रहता है, तब तक तो उस आग की लपट का प्रतिबिम्ब उस दर्पण पर पड़ता रहता है. परन्तु जभी उस दर्पण को उस अग्नि की लपट में फेंका कि.वह प्रतिबिम्ब और अग्नि लपट, दोनों एक ही हुए। वैसे ही जब तक अन्तःकरण की वृत्ति बहिर्मुख संसार की ओर रहती है, तबतक तो उसमें सर्वाधिष्ठान ब्रह्म का आभास पड़ता रहता है, परन्तु जभी वह वृत्ति उपासना-भजनादि के द्वारा अन्तर्मुख होकर ब्रह्म में लय हुई कि तुरन्त वह वृत्ति का आभास भी ब्रह्म में ही लय हो गया।

शंका—हे प्रभो! आपने पूर्व भ्रमस्थान में दो प्रकार के सिद्धांत कहे हैं, एक तो रज्जु उपहित चेतन के आश्रित अविद्या में सर्प की उत्पत्ति और दूसरा वृत्ति उपहित साक्षी के आश्रित अविद्या का सर्पाकार होना। इन दोनोंमें कौन ठीक है?

समाधान—हे सोम्य! दोनों ही ठीक हैं, परन्तु इनमें दूसरा पक्ष समीचीन है, क्योंकि यदि पहले पक्ष के अनुसार रज्जु देश में सर्प की उत्पत्ति मानी जाय तो वहाँ किसी को सर्प किसी को माला, किसी को जलधारा और किसी को दरार इत्यादि रूप में भिन्न-भिन्न प्रतीति नहीं होनी चाहिये, वरन् सबको एक सर्प ही प्रतीति होनी चाहिये तथा एक की भ्रांति दूर हो जाने पर सबकी दूर हो जानी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता दूसरे सिद्धान्त से तो सबको अपनी-अपनी वृत्ति में अलग-अलग कल्पना होती है, उन मिथ्या वस्तुओं की पृथक्-पृथक् सृष्टि होती है और जिसको रस्सी का यथार्थ ज्ञान होता है, उसकी कल्पित वस्तु नष्ट हो जाती है और बाकी पुरुषों की भ्रान्ति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। भ्रान्ति काल में वह अन्तःकरण की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वृत्ति बाहर रज्जु देश में गयी है, अतः उसमें स्थित साक्षीचेतन भी उस समय बाहर ही है और उस साक्षी चेतन के आश्रित अविद्या का तम अंश सर्पाकार हुआ है, इसलिए वह सर्प बाहर रज्जुदेश में प्रतीत होता है, अतएव इस अनिर्वचनीय ख्याति की अतिव्याप्ति, बुद्धि में ही सृष्टि माननेवाले क्षणिक विज्ञान-वालों के "आत्मख्याति" में नहीं होती। जो वह सर्प असत् हो, तो उसकी वन्ध्यापुत्र के समान प्रतीत नहीं होनी चाहिए और यदि वह सत् हो तो रज्जु के ज्ञान से उसकी निवृत्ति नहीं होनी चाहिये, क्योंकि सत् का कभी अभाव नहीं होता, अतः वह सत् और असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय है। इस प्रकार भ्रमस्थल के सारे पदार्थ अनिर्वचनीय ही होते हैं। ऐसे ही परमार्थ में भी हर एक व्यक्ति का संसार अलग-अलग होता है। जिसको अधिष्ठान ब्रह्म का ज्ञान होता है, उसका संसार मिथ्या हो जाता है और अन्य लोगों की वृत्ति में संसार की असलियत बनी रहती है।

महामते! कहीं अन्तःकरण-अवच्छिन्न चेतन को जीव माना गया है और कहीं अन्तःकरण-आभास को। इनमें कौन ठीक है? अवच्छेदवाद या आभासावद।

हे शिष्य! क्योंकि दोनों से ही एक ही अद्वैततत्त्व की प्राप्ति होती है, अतः दोनों ही ठीक हैं, परन्तु इनमें दूसरा सिद्धान्त आभासवाद ही समीचीन (श्रेष्ठ) है। अवच्छिन्न चेतन को जीव मानने में घट, पटादि सभी जगह जीवत्व की प्राप्ति होगी, क्योंकि ये सभी पदार्थ चेतन के अवच्छेदक हैं। परन्तु इन पदार्थों में भले-बुरे तथा अनुकूल-प्रतिकूल विषयों का ज्ञान रागद्वेष एवं सुख-दुःखादि का भोक्तृत्व इत्यादि ये जीवधर्म नहीं पाये जाते, परन्तु दूसरे सिद्धान्त से तो अन्तःकरण भूतों के सात्विकांश से बने हुए के कारण स्वच्छ है, अतः उसमें चेतन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का आभास पड़ता है; यही कारण है कि जहाँ-जहाँ अन्तःकरण रहता है, वहाँ हो वहाँ जीवत्व है तथा रागद्वेष, सुख-दुःखादि ये जीव के धर्म भी पाये जाते हैं।

सच बात तो यह है कि माया तथा माया जनित अन्तःकरण एवं घट, पटादि प्रपंच सभी मिथ्या हैं, अतएव इनसे सत्य ब्रह्म न तो आभासित हो सकता और न अवच्छिन्न। इन आभासवाद और अवच्छेदवाद की कल्पना तो श्रुति-शास्त्र तथा आचार्यों ने जिज्ञासुओं के बोध के ही लिए की है।

आठवाँ परिच्छेद

साधक का कर्तव्य

शिष्य बोलाः—

गुरुवर! आपके द्वारा उत्तम अधिकारी पुरुषों के लिए साधन चतुष्टय-सम्पन्न होकर श्रवणादिपूर्वक तत्त्वमस्यादि महावाक्यों का विचार सुना तथा मध्यम अधिकारी के लिए प्रणवोपासना एवं कनिष्ठ अधिकारी के हेतु लय-चिन्तन द्वारा उपाधियों का बाध करके एक ही शुद्धचेतन में अभेद-भाव से स्थित होने की बात सुना, जिससे मेरे सम्पूर्ण संशय नष्ट हो गये। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि जो लयचिन्तन में भी असमर्थ है, ऐसे स्थूल बुद्धिवाले साधक का क्या कर्तव्य है? ऐसा पुरुष इस भवसागर से कैसे पार हो सकता है?

लय चिन्तन में जो नहीं, है समर्थ भगवन्त!
ऐसा साधक किमि लहै, भवसागर का अन्त॥ १॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुरु बोले:—

अहह ! धन्य, संसारहित, तुमने पूछी बात।
अज्ञ जनोंहित अब कहूँ, सात्विक साधन तात ! २ ॥

"अहह ! तुम धन्य हो ! इस बात को तुमने संसार के कल्याण निमित्त पूछी है। हे तात ! अब मैं अज्ञानीजनों के लिए सात्विक साधनों का कथन करता हूं।":—

कर्म-उपासन गुरु-भगती, अरु सात्विक आहार।
ब्रह्मचर्य सतसंग पुनि, मन-इन्द्रिय-अधिकार ॥३॥
अभय अहिंसा सत्यरत, शौच क्षमा सन्तोष।
दम्भ-असूया से रहित, धैर्य, मान नहिं रोष ॥४॥
जो नर श्रद्धा के सहित, इन साधन से युक्त।
हृदय शुद्धि पुनि ज्ञान से, निश्चय होता मुक्त ॥५॥

भावार्थ—साधक को चाहिये कि वह प्रथम साम्प्रदायिक आग्रह का त्याग कर दे कि—"हमारी सम्प्रदाय तथा हमारे इष्टदेव श्रेष्ठ हैं और शेष निन्दनीय हैं।" रुचि-वैचित्र्य के कारण महर्षियों ने एक ही परमेश्वर की प्राप्ति निमित्त. लक्ष्य में अन्तर न रख कर सुगमता की दृष्टि से अनेक सम्प्रदाय तथा विविध उपासनाएं निर्मित की हैं। वाद-विवाद को त्यागे, क्योंकि परमात्म-तत्त्व के विचार के लिए शास्त्र है; न कि वितण्डावाद द्वारा किसी के आत्मा को कष्ट पहुँचाने के लिए। हाँ कहीं शास्त्र में सन्देह हो तो किसी मननशील मर्मज्ञ पुरुष से विनम्र प्रश्न द्वारा उसे दूर कर ले।

झाड़-फूंक करना; शाप-आशीर्वाद तथा लड़का लड़की देना, जड़ी-बूटी के फेर में पड़ना इत्यादि यह सब साधन के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हाव्याधि है। बहुत भ्रमण करना अथवा तीर्थों की कल्पना करनी भी अभ्यासी के लिए बाधा है। हाँ, यदि कल्पना या वासना न रुक सके तो उसे सश्रद्धा पूरी भी कर ले, क्योंकि वासनाएँ भगवत्प्राप्ति में प्रतिबन्धक हो जाती हैं। परन्तु सावधान! ऐसी वासना न होनी चाहिये कि समग्र आयु पूरी हो जाय और वासना की पूर्ति न हो। यहाँ तक असूया और दम्भ से रहित होने की बात कही गयी। अस्तु—

साधक को ब्रह्मचर्य का भी पालन करना चाहिये। आठ प्रकार के मैथुन से अलग रहना ही ब्रह्मचर्य-पालन है। जैसेः—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
ब्रह्मचर्यविपरीतमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥
(दक्षसंहिता)

"स्त्रियों का स्मरण करना, नृत्य देखना, हास्य करना, आसक्तिपूर्वक अवलोकन, एकान्त में वार्तालाप अथवा उनके गोपनीय अंगों का कथन, प्राप्ति का संकल्प, प्रयत्न तथा प्रत्यक्ष सहवास, यह अष्टांग मैथुन ब्रह्मचर्य के विपरीत एवं मुमुक्षु पुरुषों के द्वारा त्याज्य है।

और राजस-तामस आहारों का त्याग तथा सात्विक आहार का सेवन करना चाहिये। अति खट्टा, तीता, कड़ुवा, नमकीन, रूखा-सूखा, दाहकारक मसालेदार तथा पूड़ी, पूआ, खीर आदि गरिष्ठ पदार्थ; ये राजस आहार कहे जाते हैं। और बासी, जूठा, निरस, दुर्गन्धियुक्त, अपवित्र तथा मांस-मछली, शराब आदि ये तामस आहार हैं। एवं सादी रोटी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भात, दाल, तरकारी, शाक, फल, फूल, दूध, घी, मक्खन, शक्कर इत्यादि रसयुक्त, ताजे, हल्के पदार्थ सात्विक कहलाते हैं। राजस भोजन शोक-मोह तथा रोगादि दुखों को देनेवाले तथा तामस आहार निद्रा, आलस्य, प्रमादादि के उत्पादक एवं सात्विक पदार्थ सुख, भक्ति, आयु, बल, आरोग्य तथा अन्तःकरण की शुद्धि के हेतु होते हैं। श्रुति में कहा भी है:—

"अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मा ँ सं योऽणिष्ठस्तन्मनः।"

(छान्दोग्य ६।५।१)

"खाये हुए अन्न के तीन परिणाम होते हैं। उसका स्थूल अंश विष्ठा, मध्यम भाग मांस तथा जो सूक्ष्म सार अंश है, वह मन होता है।" अतः मन की शुद्धि के लिए सात्विक आहार का करना परमावश्यक है।

अत्यन्त चंचल चित्तवाले साधक को न तो विषयी पुरुषों के जमाव में रहना चाहिये और न एकान्त में ही। इससे मनोविकार बढ़ते हैं, अतः सन्त समागम तथा सच्छास्त्र के विचार में लगा रहे। सत्संग से लाखों कुविचार नष्ट होकर मन में सुन्दर-सुन्दर भाव उदय होते हैं, अपनी भूलें समझ में आ जाती हैं, मन कुमार्ग छोड़ कर सुमार्ग के लिए उत्सुक हो जाता है और अल्पकाल में ही पुरुष अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँच जाता है।

साधक इन्द्रिय तथा मन को सदा वश में रक्खे। ये इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् हैं। जैसे दुष्ट तथा अत्यन्त चपल घोड़े रथ में बैठा हुआ मूर्ख सारथी के सहित रथ को बलपूर्वक खाई में पटक देते हैं और उससे रथी को अति कष्ट होता है। वैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो इस शरीररूपी रथ में इन्द्रियों के घोड़े हैं, मन लगाम, बुद्धि सारथी, जीवात्मा रथी तथा सुविषय का उचित मार्ग एवं कुविषय की खाईं है। जैसे कुशल सारथी लगाम को स्वाधीन किया हुआ सुमार्ग में घोड़ों को दौड़ाता हुआ अपने गन्तव्य स्थान पर ले जाता है, वैसे ही कार्याकार्य का विचार करनेवाली व्यवसायात्मिका (शुद्ध) बुद्धि मन द्वारा इन्द्रिय तथा शरीर को आत्म प्राप्ति के साधन रूप सुमार्ग में लगाती हुई पुरुष को परम कल्याण की प्राप्ति कराती है।

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथीं विद्धि मनःप्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणी वश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा॥
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥"

(कठ १।३।३ ४. ५. ६)

वासनात्मिका बुद्धि के अधीन मन तथा इन्द्रियाँ नहीं रहतीं, अतः इन्द्रियों के पीछे लगा हुआ मन इस बुद्धि का वैसे ही नाश कर देती है, जैसे वायु नाव को जल में उथल-पुथल कर डालती है। बुद्धि के नष्ट हो जाने पर पुरुष भी नष्ट हो जाता है। पुरुष की सुगति एवं दुर्गति एक बुद्धि पर ही निर्भर करती है।

(गीता २। ६७):—

"बद्धा श्रद्धामनो स्या मुक्तो मुक्ताभिमानिनः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत् ॥"

(अष्टावक्रगीता)

"बद्धपने का अभिमानी बद्ध है तथा मुक्तपने का अभिमानी मुक्त। यह लोकोक्ति सत्य ही है कि जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है।

अस्तु। जिस वर्ण में जन्म हो तथा जिस आश्रम की प्राप्ति हो, उसके धर्मों को अन्तःकरण की शुद्धि के लिए निष्काम भाव से करते रहना चाहिये एवं एकादशी, शिवरात्रि, रविवार तथा चान्द्रायणादि व्रतों को भी यथाशक्ति करते चले। आचार्य और शास्त्र में श्रद्धा तथा विश्वास रक्खे। गुरूपदिष्ट मंत्र का जप करे। समस्त प्राणियों में परमेश्वर का निवास समझकर किसी से भी घृणा या द्वेष न करे। किसी के अपराध करने पर भी क्रोध न करता हुआ क्षमा दर्शाये। किसी में न तो दोष ढूंढे तथा न आरोपण करे और न उसे कहते फिरे। अगर कोई व्यक्ति अपने में दोषारोपण करता हो, तो उसे अज्ञानी बालक समझकर क्षमा करे, और यदि सत्य ही कहता हो, तो उसे परम हितैषी समझकर अपने अवगुणों को सुधारने की कोशिश करे।*

जगत् के सभी व्यवहार वाणी से होते हैं, जिसने वाणी की चोरी की, वह सर्वस्व चोरी कर चुका; अतः हमेशा सत्य बोलना चाहिये। परमेश्वर भी सत्य स्वरूप ही है, अतएव झूठा मनुष्य परमात्मा पर भी आघात पहुँचाता है। सत्य की जय होती है, झूठे का नहीं—

"सत्यमेव जयते नानृतम्"

(श्रुति)

---

*देखिये 'वेदान्त-कुञ्जी' का 'असूया' प्रकरण।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्याणार्थी पुरुष को पवित्रता (शौच) पर भी ध्यान देना चाहिये। जल, मिट्टी आदि से बाहरी शुद्धि होती है तथा राग-द्वेष, छल-कपट के त्यागपूर्वक ईश्वर-स्मरण-चिन्तन, ध्यानादि से भीतरी पवित्रता होती है। तथा भोजन का अन्न, पीने का पानी, पहिनने का वस्त्र एवं निवासस्थान, इनको सदा पवित्र और स्वच्छ रखना चाहिये। भगवान् की सगुणोपासना में निरन्तर लगे रहना चाहिये। राम, कृष्ण, शिव, विष्णु आदि की नवधाभक्ति को सगुणोपासना कहते हैं।

भगवन्! राम, कृष्णादि तो एक पुरुष विशेष हो गये हैं, भला उनकी उपासना से क्या लाभ ?

प्रियवर! ऐसा न कहो। वे परमेश्वर के साक्षात् अवतार हैं। जब संसार में अधर्म की अति वृद्धि तथा धर्म का ह्रास हो जाता है; जब दुष्ट अत्याचारी फैल जाते और साधु-सन्त तथा सदाचारी पुरुषों को असह्य कष्ट होने लगता है, तब वे भक्तजन भगवान् को करुणास्वर से पुकारते हैं। उनकी भक्तिभरी प्रार्थना के वशीभूत होकर परमेश्वर अपनी विचित्र शक्तिवाली माया के द्वारा हर एक युग में राम, कृष्णादि के रूप में प्रकट हो सन्तों की रक्षा एवं दुष्टों का विनाश करता है। (गीता ४।७,८) सन्त श्रीतुलसीदास जी ने भी कहा है:—

"जब जब होइ धरमकी हानी।
बाढ़हिं असुर महा अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥"
"फूले कमल सोह सर कैसे।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसे।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"निर्गुन ब्रह्म सगुन भये कैसे।
जल-हिम-उपल बिलग नहिं जैसे॥"
"एक दारुगत देखिअ एकू।
पावक युग सम ब्रह्म विवेकू॥"

तथा:—

एको ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतो मुखः॥
(श्रुतिः)

"सर्व दिशाओं में रहनेवाला एक ही परमात्म देव पूर्व (भूत) काल में उत्पन्न हुआ था, वही गर्भ में आता है तथा वही (वर्तमान में) उत्पन्न होता है और वही (भविष्य में) पैदा होगा, एवं वही सब ओर मुखवाला तथा सम्पूर्ण भूतों में प्रत्यक् (आत्मा) रूप से स्थित है।"

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप इयते। (श्रुतिः)

"परमेश्वर माया के द्वारा अनेक रूप धारण करता है।"

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधाभिजायते।
(श्रुतिः)

"परमात्मा गर्भ के भीतर स्थित होकर अनेक प्रकार से प्रकट होता है।" इत्यादि श्रुतियाँ भी ईश्वरावतार सिद्ध करती हैं। अस्तु।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह ईश्वरावतार दुष्टों के पाप और महात्माओं के पुण्य से होता है, अतः वह दुष्टों का वध तथा सन्तों की रक्षा कर अन्तर्धान हो जाता है, क्योंकि पाप से दुःख और पुण्य से सुख होता है।

जीवों के शरीर पंचभौतिक हैं और राम कृष्णादि के मायामय प्रतीतिमात्र इन जीवों में साधन द्वारा रिद्धियाँ-सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं परन्तु उन राम, कृष्णादि में, आविर्भाव होते ही स्वाभाविक ही दीख पड़ने लगती हैं। ये गुरु और शास्त्र के उपदेश द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर मुक्त होते हैं तो वे सदा-सर्वदा मुक्त हैं। ये अपने कर्मों के वशीभूत हुए ईश्वरीय प्रेरणा से जन्म लेते एवं कर्मफल भोगते हैं तो उनमें निजी कर्म कुछ नहीं होते, बल्कि वे पूर्वोक्त प्रकार से संतों और दुष्टों के मिश्रित पुण्य पापों से अवतरित होते हैं। इनको जब तक ज्ञान नहीं होता तब तक आसक्त तथा अहंकारपूर्वक होने के कारण अपने कर्मों के भोगने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ता है, परन्तु उनके सकल कर्म अहंता-ममता से रहित अनासक्तिपूर्वक एवं उदासीनवत् होते हैं, अतः उन्हें कर्मफल भोग निमित्त जन्म लेना नहीं पड़ता। इनमें प्रेम होने से रजोगुण-तमोगुण की वृद्धि होकर बन्धन होता है, तो उनमें प्रेम करने से हृदय में शुद्ध सात्विकता का संचार होकर ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है। इस प्रकार मनुष्य और उन राम, कृष्णादि के शरीर में बहुत अन्तर है।*

प्रश्न—हे गुरो! इन राम, कृष्णादि के अवतारों में कौन सा अधिक सामर्थ्यशाली है और किसकी उपासना से शीघ्र कल्याण होता है?

---

* विशेष देखिये, 'कल्याण-निकेतन' का उपासना शीर्षक।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उत्तर—हे शिष्य! ये सभी अवतार एक ही परमेश्वर के अवतार होने से एक-सी ही शक्ति रखते हैं, अतः पूर्ण श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक किसी भी एक की उपासना से शीघ्र ही उद्धार हो जाता है। हाँ, जैसी अभिरुचि, गुरु शिक्षा तथा अपनी सम्प्रदाय हो वैसी ही उपासना करनी चाहिए, क्योंकि पूर्वार्जित संस्कार के अनुसार ही अपनी प्रवृत्ति होती है तथा सत्संग भी प्राप्त होता है; परन्तु अन्य अवतारों से अश्रद्धा भी नहीं होनी चाहिये।

जब उपासना द्वारा परमेश्वर की प्रसन्नता होती है, तो विवेक, वैराग्यादि साधनों की प्राप्ति होती है। अस्तु

अभ्यासी को सर्वदा निर्भय रहना चाहिये। यह निश्चय है कि बिना खोटे प्रारब्ध या गतायु के न तो कोई क्लेश पहुँचा सकता है और न कोई प्राण का ही वियोग कर सकता, तो फिर भय कैसा? लोक में एक साधारण शक्तिशाली पुरुष का नौकर अपने मालिक के भरोसे निर्भय रहता है तो जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा की शरण में है उसे क्या भय? 'यदि आज ही मृत्यु हो जाय तो क्या चिन्ता? इस मृत्युलोक में कोई अमर होकर थोड़े ही आया है? आज नहीं तो कल, कल नहीं तो किसी और दिन नश्वर शरीर का पात तो अवश्यम्भावी है। फिर अपना निज स्वरूप आत्मा तो अजर-अमर तथा अवि-नाशी है' ऐसी भावना नित्य-निरन्तर रक्खे।

ऐसी कल्पना कभी न करे कि साधन कर रहे हैं, न जाने सफलता प्राप्त होगी या नहीं। सफलता अवश्य मिलेगी; यदि संचित की प्रबलता है तो शीघ्र ही नहीं तो चिरकाल में। पूर्व जन्मों के पाप से अभ्यास में विघ्न होते हैं। या तो चित्त में विक्षेप की प्रबलता हो जाती है अथवा शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उनसे घबराये नहीं, प्रत्युत साहस और धैर्य के साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भजन में लगा रहे, वे सबके-सब भजन और भोग द्वारा अपने-आपनिवृत्त हो जायेंगे, शास्त्र में कहा है—

जन्मान्तरकृत पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः॥

"जन्मान्तर का किया हुआ पाप व्याधि रूप से कष्ट देता है, और दान, जप, हवन तथा भगवत्पूजनादि औषधियों से उसकी शान्ति होती है।" अस्तु—

लौकिक और पारलौकिक भोगों को नश्वर एवं दुःख रूप जान कर उनकी इच्छा का त्याग कर दे। कोई दुःख नहीं चाहता परन्तु आही जाते हैं, वैसे ही सुख भी प्रारब्धवश आही जायेंगे। ये दुःख-सुख रात-दिन के समान बराबर आते-जाते रहते हैं, अतः इनमें हर्ष-शोक से रहित सम रहे। जो कुछ भोग प्रारब्धानुसार प्राप्त हो जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे, व्यर्थ का संकल्प-जाल न रचे। यह शरीर भी सुख रहित और अनित्य ही है। ठीक नहीं कि यह कब छूट जायेगा, अतएव इसे भोगों के प्रयत्न में लगा कर इसका दुरुपयोग न करे, बल्कि इससे परमात्म चिन्तन करेः—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।'
(गीता)

भगवान् कह रहे हैं—अर्जुन! 'अनित्य तथा सुख रहित इस शरीर को पाकर मेरा भजन कर।'

जगशान्य तजै सुकरी-विट-सों, लखि,
नारि पिशाचिनि के सम जानै।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ममता रौरव समझै, श्वपचै अभिमान,
सदा तन को शव मानै ॥
सुतको वितको अरु लोकहु को,
न चहै दुखरूप सदा अनुमानै ।
सुख-सत्य-प्रभा निज आतम जो,
करि साधन तात ! उसे पहिचानै ॥

श्रुति ने भी कहा है:—

अभिमानं सुरापानं गौरवं घोररौरवम् ।
प्रतिष्ठा सूकरीविष्ठा त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥

"देहाभिमान मदिरापान के समान तथा कुल आदि का गौरव घोर रौरव (नर्क विशेष) के सदृश और संसारी प्रतिष्ठा सूकरीविष्ठा के तुल्य है, अतः इन तीनों का त्याग करके सुखी हो जाना चाहिये ।"

जो मनुष्य श्रद्धा के सहित इन पूर्वोक्त साधनों से युक्त होगा, उसकी चित्तशुद्धि होकर, फिर आत्मज्ञान द्वारा अवश्य मुक्ति हो जायेगी ।

निम्नाङ्कित श्रुतियों के द्वारा वेद मुमुक्षु पुरुषों के लिये ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश करता है:—

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तैत्तरीयोपनिषद् २।१)
"विज्ञानमानंदं ब्रह्म" (बृहदारण्योपनिषद् ३।१)
"आनन्दो ब्रह्म"......(तैत्तीरीयोपनिषद् ३।५)
"तदेतद् ब्रह्म"......(बृहदारण्योपनिषद् १।४।१६)
"अपूर्वमपर"......(बृहदारण्योपनिषद् २।१६।१६)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखम् ॥" (बृहदारण्य ३।८।८)

"अनामगोत्रम्" ......(मुण्डकोपनिषद् २।७२)
"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्"......(कठोपनिषद् ३।१६)
"निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्"......(बृहदारण्योपनिषद् ४।६)

"नित्यं शुद्धं ब्रह्म मुक्तं सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णमद्वयं सदानन्दं चिन्मात्रम्',

(नृसिंहोत्तरतापन्योपनिषद् ३।८।८)

'शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः

(माण्डूक्योपनिषद् ७)

"तत्त्वमसि" इत्यादि ।

नवाँ परिच्छेद

प्राणियों की विभिन्न दशाएँ

गुरु की विज्ञान मय वाणि से अत्यधिक प्रसन्न होकर एवं युगल कर जोड़ तथा शीश नवाकर शिष्य ने पुनः कहा—

प्राणी कितने तरह के, कहिये श्रुति-सिद्धान्त ।
भगवन् ! उनकी क्या दशा, जब होता देहान्त ॥१।

"भगवन् !" इस संसार में कितने प्रकार के प्राणी होते हैं ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा देहान्त होने पर उनकी क्या दशा होती है, इस विषय में आप श्रुति का सिद्धान्त कहें ?"

श्रीगुरु बोले:—

पामर विषयी और पुनि, तीसर है जिज्ञासु।
चौथा मुक्त सुजान सुन, ज्ञानी कहिये तास ॥२॥

"हे सुजान (चतुर) शिष्य! [संसार में चार प्रकार के प्राणी होते हैं] सुनो! पामर, विषयी और तीसरा जिज्ञासु तथा चौथा मुक्त पुरुष है, उसी को ज्ञानी भी कहते हैं।"

पामर तिर्यग-नर्क में, विषयी लोकन-माहिं।
मुक्ति लहत जिज्ञासु पुनि, मुक्त पुरुष गति नाहिं॥३॥

"पामर पुरुष तिर्यग योनि अथवा नर्क में जाता है, विषयी स्वर्गादि लोकों में; तथा जिज्ञासु मुक्ति को प्राप्त करता है और मुक्त पुरुष में तो गमनागमन रूप गति है ही नहीं।" वह तो ब्रह्म रूप ही है।

भावार्थ—जो पुरुष ईश्वर, शास्त्र एवं परलोक को न मानकर निर्भयतापूर्वक यथेच्छाचरण करता है अर्थात् अपनी इंद्रिय और मन की विषय वासनाओं की पूर्ति के लिए चोरी, हिंसा एवं पर स्त्री गमन करते, आग लगाते, विष देते तथा मद, मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करते हैं इत्यादि क्रूर कर्म करनेवाले आसुरी प्रकृति के हैं, वे पामर कहलाते हैं। उनके लिये न तो स्वर्ग है और न ब्रह्मलोक, वे दक्षिण और उत्तर इन दोनों मार्गों से भ्रष्ट हुए शरीर छोड़कर घोर नर्क में पड़ते और फिर वहाँ से सर्प, बिच्छू, कीड़े मकोड़े तथा शूकर कूकर आदि तिर्यग् योनियों में पड़कर बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं। जैसे श्रुति में कहा है :—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा च।
एते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरंस्तैरिति॥

"स्वर्ण चुरानेवाला, मद्यपान करनेवाला, गुरु पत्नी से रति करनेवाला तथा ब्रह्म हत्यारा ये चार नर्क में गिरते हैं और पाँचवाँ उनकी संगति करनेवाला भी गिरता है।" (छांदोग्य ५।१०।८, ९)

दूसरा जो ईश्वर, वेद-शास्त्र तथा मुक्ति का अस्तित्व तो मानता है, परंतु वह ईश्वर और मुक्ति नहीं चाहता, वरन वह शास्त्रानुसार आचरण करके इस लोक के स्त्री, पुत्र, धनादि तथा परलोक के अमृत, अप्सरा, नंदनवन, गंधर्व गीत आदि पदार्थों को ही चाहता है, वह इष्ट-पूर्त आदि कर्मों को करता है।

प्रभो! इष्ट तथा पूर्त कर्म कौन हैं?

महाभाग! अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदविहित कर्म का पालन, अतिथि-सत्कार तथा बलि वैश्वदेव यह सब इष्ट नाम से कहा गया है। और बावली, कूप, तालाब आदि का खोदवाना, देवालय बनवाने, अन्न-क्षेत्रों का निर्माण तथा बगीचा लगाना, यह सब पूर्त नाम से कहा जाता है। जैसे शास्त्र में कहा है:—

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते॥
वापी कूप तडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार के इष्ट और पूर्त कर्मों के करने वाले सकामी पुरुष दक्षिणायन मार्ग द्वारा स्वर्ग में जाकर वहाँ स्वर्गीय भोगों को भोगते और फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर मृत्युलोक में लौट आते हैं। तथा उपासक पुरुष उत्तरायण मार्ग से ब्रह्मलोक में पहुँचकर वहाँ उस लोक के दिव्य भोगों को भोगते तथा ब्रह्मा से ज्ञान पाकर मुक्त हो जाते हैं; पुनः संसार में नहीं लौटते। जैसे श्रुतिः—

"सम्वत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च। तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमस मेव लोकमभिजायन्ते। त एव पुनरावर्तन्ते।"

(प्रश्न १।६)

"यह सम्वत्सर ही प्रजापति है, उसके दक्षिण और उत्तर दो अयन हैं। जो पुरुष इष्ट-पूर्तरूप कर्म करते हैं, वे चन्द्र संबंधी लोक (स्वर्ग) को प्राप्त होते हैं और वे फिर लौट आते हैं।

तीसरे जो इस लोक और परलोक के भोगों को नश्वर समझकर उनकी प्राप्ति की इच्छा का त्याग कर देते हैं, उन्हें दुःख रूप जानकर परम वैराग्य को धारण कर एक सच्चिदानन्द स्वरूप आत्म प्राप्ति की ही इच्छा करते हैं, वे पुरुष जिज्ञासु या मुमुक्षु कहलाते हैं। यदि वे उत्कृष्ट वैराग्य और प्रखर बुद्धि से युक्त होते हैं, तब तो इस शरीर में ही शमादिसाधन सम्पन्न तथा श्रवणादि से युक्त होकर तत्त्व मस्यादि महावाक्यों के विचार द्वारा मुक्त हो जाते हैं। और यदि वे मंद बुद्धिवाले होते हैं, तब तो प्रणवरूप निर्गुण ब्रह्म की उपासना द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर मुक्त होते हैं। इस जन्म में साक्षात्कार नहीं होता और शरीर छूट जाता है, तो पुनः वे दूसरे या तीसरे जन्म में पूर्व संस्कार से वशीभूत हो प्रणवोपासना द्वारा ज्ञान प्राप्तकर मुक्त हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाते हैं। और यदि उन्हें मन्द वैराग्य के कारण ब्रह्मलोक के सुख की वासना रहती है और उसे हठात् रोककर प्रणवोपासना में लगे रहते हैं, तब तो वे शरीरान्त होने पर ब्रह्मलोक में पहुँचकर वहाँ के दिव्य भोगों को भोगकर फिर ज्ञान द्वारा मुक्त हो जाते हैं, तथा यदि वे सांसारिक सुखों की वासनाएँ प्रणवोपासना में लगे रहते हैं, तो उन्हें यहाँ ज्ञान नहीं होता और शरीर छोड़कर फिर वे पवित्र श्रीमान् के कुल में जन्म लेकर पूर्वाभ्यास से प्रेरित हो ब्रह्मोपासना करते तथा ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न—महाप्राज्ञ ! दक्षिण मार्ग (दक्षिणायन) और उत्तर मार्ग (उत्तरायण) क्या कहलाता, और प्राणी उनके द्वारा कैसे गमन करते हैं ?

उत्तर—हे सोम्य ! छः महीने दक्षिणायन जो सूर्य रहते हैं, वह दक्षिण मार्ग या पितृयाण कहलाता है और जो छः मास उत्तरायण सूर्य रहते हैं, उसे उत्तरमार्ग अथवा देवयान कहते हैं। इष्ट-पूर्त के करनेवाले सकामी पुरुष जब शरीर छोड़ते हैं, तो वे प्रथम धूम को प्राप्त होते हैं, *धूम से रात्रि को, रात्रि से कृष्णपक्ष को, कृष्णपक्ष से षण्मास दक्षिणायन को षण्मासदक्षिणायन से संवत्सरको और सम्वत्सर से पितृलोक को प्राप्त होते हैं। इसके बाद आकाश को, आकाश से चन्द्रलोक को और चंद्रलोक से स्वर्गलोक को प्राप्त होकर वहाँ देवताओं के भोगों का भोगते हैं। तदन्तर पुण्य चुक जाने के बाद वहाँ से वे, गिरकर आकाश को प्राप्त होते हैं, आकाश से वायु को, वायु से धूम को और धूम से मेघ होकर जलरूप में बरसते हैं, जिससे पृथिवी पर अन्न, औषधि, लता एवं वृक्षादि के रूपों में प्रवेश करके रहते हैं। फिर वे अन्नादि प्राणियों द्वारा भक्षण किये हुए प्राणियों के शरीरों में रज तथा वीर्यरूप से स्थित होते हैं। पुनः स्त्री-पुरुष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के समागमद्वारा गर्भ में निवास करते हैं। तत्पश्चात् वहाँ गर्भ गत दुःखों को भोगकर जन्म लेते हैं। तथा हे प्रिय! वे अपने कर्म एवं वासनानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, तथा शुद्र आदि वर्णों में अथवा नीच योनि चाण्डाल और शूकर, कूकर, शृगाल एवं कीट, पतंगादि तिर्यग् योनियों में उत्पन्न होते हैं। छान्दोग्य ५।१०।३, ४, ५, ६, ७। हे शिष्य पितृयाणमार्ग का मैंने सविस्तार वर्णन किया, अब देवयान मार्ग को सुनो—

"तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता
विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेणते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः
स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥"

"जो ब्रह्मविद्या के उपासक शांत पुरुष तप, श्रद्धादि से युक्त होकर भिक्षावृत्ति से विचरते हुए कानन में निवास करते है, वे विक्षेप से रहित पुरुष सूर्य द्वार उत्तर मार्ग के द्वारा वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ अव्यय अविनाशी पुरुष रहता है।"

इस श्रुति के अनुसार जो उपासक पुरुष वन आदि एकांत में रहकर सत्य ब्रह्मचर्य और तपादि द्वारा ब्रह्म को उपासना करते हैं, तो जब उसका शरीर छूटता है, तब वह प्रथम शीघ्र ही अग्नि को प्राप्त होता है।* अग्नि से ज्योति को, ज्योति से दिन को दिन से शुक्लपक्ष कोशुक्लपक्ष से षण्मासउत्तरायण को, षण्मासउत्तरायण से सम्वत्सर को, सम्वत्सर से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत होकर कुछ कालतक चमकता रहता है,

*यहाँ भी अग्नि आदि से मतलब अग्नि आदि के अभिमानी देवताओं से है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदन्तर एक अमानव पुरुष आकर उसे ब्रह्मलोक में ले जाता है और वहाँ वह पुरुष ज्ञान प्राप्तकर जन्म मरण से मुक्त हो जाता है (छान्दोग्य ५।१०।१।२)।

हे संशयनाशक गुरो! जो इष्ट पूर्त्तादि कर्म करनेवाले सकामी पुरुष दक्षिण मार्ग से स्वर्ग में तथा उपासक पुरुष उत्तर मार्ग से सत्यलोक में जाते हैं, तो जो कर्क की संक्रान्ति से धन की संक्रान्ति तक सूर्य दक्षिणायन रहते हैं, उसमें मृत्यु होनी निकृष्ट, एवं जो मकर की संक्रान्ति से मिथुन की संक्रान्ति तक उत्तरायण सूर्य रहते हैं, उसमें शरीर का छूटना श्रेष्ठ क्यों माना गया है? तथा श्रीभीष्मजी ने शरसय्या पर पड़े-पड़े छप्पन दिनों तक उत्तरायण काल की प्रतीक्षा किसलिए की थी?

हे कृपालो! कहीं-कहीं शास्त्र में वर्णन पाया जाता है कि जैसे तृणजलौका (तृण पर रहनेवाला) कीट (कीड़ा) पहले दूसरे तृण को ग्रहण कर लेता है तब प्रथम तृण को छोड़ता है, वैसे ही यह जीव पहले एक दूसरे शरीर को धारण कर लेता है, तब प्रथम शरीर को छोड़ता है, इसका तात्पर्य क्या है?

हे प्रिय! जब यह जीव मरणासन्न हो जाता है तो यह त्रिदोष (वायु, पित्त, कफ) से ग्रसित होकर हजारों बिच्छू के डंक तथा सहस्र सूइयों से छिदे जाने के समान अति कष्टित होता है, फिर वह अपनी आजीवन की वासनाएँ लिये हुए मूर्छित हो जाता और किसी को नहीं पहिचानता है, तदनन्तर जब उसकी मूर्छा भंग होती है, तब उसके सामने वही दृश्य आ जाता है, जिसकी वासना लिये हुए वह मूर्छित हुआ था। वह मन द्वारा एक दूसरा जगत् देखता है और उस जगत् की सृष्टि में अपने को एक सुन्दर शरीरधारी पाता है। अब उसे प्रथम के शरीर का भाव नहीं रहता तथा प्रथम के सगे-सम्बन्धी भी भूल जाते हैं, फिर तो थोड़ी देर में प्राण पखेरू इस शरीर को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छोड़ देते हैं, और वह उस नयी सृष्टि में रह जाता है। हे शिष्य! इस रीति से प्राणी प्रथम, मन के द्वारा एक दूसरे शरीर को पकड़ लेता है तब कुछ समय पीछे इस वर्तमान के स्थूल शरीर को छोड़ता है।

हे नारायण देव! यहाँ तक तो मैंने पामर, विषयी तथा जिज्ञासु इन तीन श्रेणियों के जीवों को विभिन्न गतियां का वर्णन सुना, अब आप कृपया मुक्त पुरुष के विषयमें भी विस्तार-पूर्वक कुछ कहें।

हे वत्स! यद्यपि मुक्त ज्ञानी पुरुष के विषय में मैं पहले कई बार कह आया हूँ, तथापि तुम्हें इस विषय में सविस्तार सुनने की इच्छा है तो मैं कहता हूं, तुम सावधान होकर श्रवण करो।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं:—संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण जिसको आगामी भी कहते हैं। 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे' (मुण्डक २।२।८) 'उस परावर (परमात्मा) के साक्षात्कार हो जाने पर इस पुरुष के सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं, इस श्रुति के अनुसार ज्ञानवान् के जन्म-जन्मान्तर के संचित पुण्य और पाप क्षीण हो जाते हैं। कारण, आत्मा में तो कोई पुण्य या पाप है नहीं। यह पुण्य-पाप का कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व तो अपने आत्मस्वरूप के न जानने से ही अनादि काल से वैसे ही भास रहा है, जैसे प्राणी नींद में अपने को भूल कर नाना कर्मों का कर्ता एवं भोक्ता बन बैठता है परन्तु ज्यों ही नींद टूटी कि वह उस स्वप्न के सारे द्वन्द्वों से अलग हो जाता है। उसे न तो स्वप्न के विप्र-वध का पाप लगता और न अश्वमेध यज्ञ का फल ही मिलता है। वैसे ही यह पुरुष जभी अपने निष्क्रिय, असंग एवं नित्य मुक्त स्वरूप को जान जाता है, तभी उस ज्ञान के प्रताप से अज्ञान निद्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का नाश होकर सभी संचित कर्मों के दुःस्वप्न नष्ट हो जाते हैं।

ज्ञान होने के पश्चात् जो शरीर से क्रियमाण कर्म होते हैं, वे भी उसी ज्ञानाग्नि से भस्म हो जाते हैं, अथवा वे कर्म ज्ञानी को वैसे ही स्पर्श नहीं करते, जैसे कमल के पत्ते को जल स्पर्श नहीं कर सकता। जैसे श्रुति में कहा है:—

"यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पाप कर्म न श्लिष्यन्ते।"

(छा० ४।१४।३)

यहाँ यज्ञादि पुण्य कर्म भी पुनर्जन्म के हेतु होने से पाप ही माने गये हैं। और भी कहा है:—

"अश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात् प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसंभवामि।"

(छा० ८।१३।१)

"जैसे अश्व [अपने धूलधूसरित] रोमों को फटकार कर तथा जैसे चन्द्रमा राहु मुख से छूट कर [निर्मल हो जाता है], वैसे ही मुक्तात्मा शरीर के पाप-पुण्य को छोड़ कर ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।" यहाँ 'राहोः शिरः' राहु का शिर' की तरह ब्रह्म (आत्मा) का स्वरूप ही ब्रह्मलोक है। तथा:—

तथा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।

(मुण्डक ३।२।८)

"वैसे ही ज्ञानवान् पाप-पुण्य को छोड़कर परम निरञ्जन समरस ब्रह्म को प्राप्त होता है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतं ह वाव न तपति किमहं नाकरवं ।
किमहं पापमकरवम् ॥ (तै० २।९।१)

"इस मुक्त पुरुष को यह चिंता नहीं तपाती कि मैंने कौनसा पुण्य कर्म नहीं किया और कौनसा पापकर्म कर डाला।"

शंका—जब कि मुक्त पुरुष को पाप-पुण्य स्पर्श नहीं करते और वह पुरुष उन्हें यहाँ ही छोड़ देता है तो उन पुण्य-पापों की क्या गति होती है? वे क्या हो जाते हैं?

समाधान—यदि वह पुरुष व्यवहार दृष्टि से गृहस्थाश्रमी होता है तो उसका दायभाग (धन, मारूसी) उसके पुत्र ले लेते हैं। सुहृद्‌जन पुण्य कर्म और द्वेषीजन पाप कर्म ग्रहण करते हैं। जैसे श्रुतियाँ :—

तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम् ॥ (शाट्यायिनी)

तत्सुकृत दुष्कृते विधूनुते तस्य प्रियाः ज्ञातयः सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दुष्कृतम् ॥ (कौ० १।४)

"साधु संन्यासियों की जाति के तो साधु-संन्यासी और उनके शिष्य पुत्र हैं।"

अस्तु। संचित तथा क्रियमाण कर्मों की तो ये दशाएँ हुई; अब रह गया प्रारब्ध, सो वह तो भोग द्वारा ही शांत होता है। जैसे हाथ से बाण छूट जाने पर वह अपना वेग पूरा करके ही शांत होता है; कुम्हार जब चक्र घुमाकर बर्तन निकाल लेता है तो उस चक्र से कुछ मतलब न रहने पर भी वह अपना वेग समाप्त होने पर ही स्थिर होता है। अथवा जैसे कोई भयानक स्वप्न देखने के बाद नींद टूट जाने पर भ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ देर तक उसके संस्कारवशात् देह में कँपकँपी रहकर ही शांत होती है; वैसे ही ज्ञान द्वारा अज्ञान के नाश हो जाने पर भी उस अज्ञान का संस्कार रूप प्रारब्ध कर्म शेष रह जाता है और वह भोग के द्वारा क्षीण होता है। परंतु ज्ञानी पुरुष उन प्रारब्ध भोगों से उदासीन रहता है। चाहे उसे सकल ऐश्वर्य प्राप्त हो जायँ, या उस पर वज्र का पहाड़ टूट पड़े, उसे कुछ भी हर्ष-शोक नहीं। चाहे वह सौ वर्ष तक जीता रहे अथवा आज ही शरीर छूट जाय; कुछ चिंता नहीं। वह प्रलयाग्नि से क्षुभित नहीं होता, किसी अघटित घटना से आश्चर्यान्वित नहीं होता, वह कभी विस्मित नहीं होता, वरन् वह जगत् के सभी व्यवहारों को मायामय मिथ्या समझता हुआ सदा-सर्वदा शांत, सम, सुखी एवं प्रसन्न रहता है, वह सुख-दुःखादि द्वन्द्वों को अंतःकरण का धर्म जानकर उनसे हमेशा तटस्थ रहता है।

प्रश्न—ज्ञानियों में राग द्वेष होते हैं या नहीं ?

उत्तर—क्यों नहीं, वे अवश्य होते हैं। यदि उनमें राग-द्वेष न होंगे तो प्रारब्ध भोग ही क्योंकर होगा ? क्योंकि सुख-दुःख का भोग ही प्रारब्ध-भोग कहलाता है। यदि ये रागद्वेष न रहेंगे तो सुख-दुःख होंगे ही नहीं क्योंकि जिस विषय में राग होता है, उसकी प्राप्ति से सुख तथा द्वेषवाले विषय की प्राप्ति से दुःख होता है। हाँ, मुक्त पुरुषों में रागद्वेष तो होते हैं, परन्तु वे दृढ़ नहीं होते, अपितु वे केवल प्रारब्ध भोगमात्र अदृढ़ होते हैं, अतः जैसे भुने हुए अनाज से मनुष्य की क्षुधा की निवृत्ति तो हो ही जाती है, लेकिन बोने से उनमें से अंकुर नहीं निकल सकते, क्योंकि उनकी बीजत्व शक्ति जल कर नष्ट हो चुकी है। वैसे ही ज्ञानी पुरुषों के रागद्वेष भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अनासक्ति एवं आत्म दर्शनरूप अग्नि से दग्ध हुए रहते हैं, इसलिए वे पुनर्जन्मरूपी अंकुर के कारण नहीं होते, प्रत्युत सिर्फ वे भोग देने मात्र के ही लिये होते हैं।

हे शिष्य! वास्तविक बात तो यह है कि ये सम्पूर्ण उपदेश सारी प्रक्रियाएँ एवं समस्त युक्तियाँ जिज्ञासु पुरुषों के बोध के ही लिए कही गयी हैं। न तो कोई कारण है और न कार्य; न कर्ता है और न कर्म; न भोक्ता है और न भोग्य। यह सारा प्रपंच अनादि कल्पना से बना है, वास्तव में एक आत्मतत्त्व ही अपने-आपमें स्थित है:—

"रज्जुरूपे परिज्ञाते सर्पभ्रान्तिर्न तिष्ठति।
अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चः शून्यतां व्रजेत्॥
देहस्यापि प्रपञ्चत्वात्प्रारब्धावस्थितिः कुतः।
अज्ञानिजनबोधार्थं प्रारब्धं वक्ति वै श्रुतिः॥"

(अपरोक्षानुभूति)

"जिस प्रकार रस्सी के स्वरूप को भली भाँति जान लेने पर सर्प की भ्रान्ति नहीं रह जाती, उसी प्रकार अधिष्ठान ब्रह्म के जान लेने पर प्रपंच (जगत्) शून्यता को प्राप्त हो जाता है। देह के भी प्रपंच होने पर प्रारब्ध की स्थिति ही कहाँ रह जाती है, निस्सन्देह अज्ञानिजनों के बोध के ही लिए श्रुति प्रारब्ध का कथन करती है।"

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तो इत्येषा परमार्थता॥

"न प्रलय है, न उत्पत्ति; न कोई बद्ध है, न मुक्त और न कोई मुमुक्षु है, न साधक—परमार्थ बातें तो यह इसी प्रकार है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

इहलोक नहीं परलोक नहीं,
विधिलोक नहीं, नहिं इन्द्र-विलासै।
सुरथान नहीं, नहिं दक्षिण मारग,
भ्रान्ति भये जहवां लगि भासै॥
तुममें नहिं बन्धन, मोक्ष कहां?
तब ज्ञान कहां नहिं अज्ञ निवासै।
सुखरूप अनूप सुनो शिष है,
निज आतम आपुहि-आप प्रकासै॥

इसलिए हे शिष्य! तू सम्पूर्ण कल्पनाएँ छोड़कर अपने-आपमें स्थित हो जा! ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संन्यास

(१) संन्यास का माने होता है— सम्यक् प्रकार से न्यास (त्याग)। इस रीति से संन्यास तो एकमात्र ब्रह्म ही है, क्योंकि उसमें माया और माया जनित प्रपंच का सर्वथा अभाव (त्याग) है। इसीसे श्रुति कहती है:—'संन्यासो ब्रह्म' 'संन्यास ब्रह्म है।'

(२) संन्यास स्वरूप ब्रह्म सबका निज आत्मा है, अतः उस अपने आत्म स्वरूप में स्थित होकर चित्तवृत्ति को तद्रूप कर देना संन्यास है और इस आत्माकार वृत्ति से युक्त पुरुष संन्यासी है।

(३) अपने एक, असंग तथा आनंदस्वरूप आत्मा की पूरी पहिचान हो जाने पर कर्ता, कर्म तथा क्रिया की वास्तविकता विलकुल उड़ जाती है, अपने आपकी मस्ती में सकल कर्म एवं कर्मजनित फल (लौकिक और पारलौकिक पदार्थ) असार जान पड़ते हैं और कर्ता (अहं, जीव) का अभाव हो जाता है: इसलिए लौकिक तथा वैदिक समस्त क्रियाओं का संन्यास [त्याग] हो जाता है। भला, कर्ता के विना क्रियाएँ हो ही कैसे सकती हैं ?

(४) ब्रह्म ध्यान के इच्छुक पुरुष का चित्त निष्काम कर्म के द्वारा शुद्ध होकर जब ध्यान में स्थित होने लगता है तब भी वाह्य क्रिया-कलापों का त्याग हो जाता है।

(५) इंद्रियों के समस्त व्यापारों को छोड़कर तो ध्यान होता है और इसके विपरीत इंद्रियों की नाना चेष्टाओं से कर्म। तो भला, जिसको ध्यान रस का आस्वाद मिलने लगेगा, वह वाह्य क्रिया-कलापों में क्यों उलझा रहेगा ? योगेश्वर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीकृष्णचन्द्र ने इसी बात को गीता अध्याय ६ के तीसरे श्लोक में कहा है।

(६) शुद्धांतःकरण वाले ध्यान योग के अधिकारी के लिये श्रुति-शास्त्रों में शिखा-सूत्र का त्याग तथा काषाय वस्त्र, कमण्डलु आदि के ग्रहणपूर्वक संन्यासाश्रम का विधान किया गया है।

(७) सन्यासाश्रमी के अतिरिक्त अन्य आश्रमियों के ध्यान योग में स्थित होकर बाह्य कर्म का त्याग कर देने पर लोकसंग्रह तथा आश्रमों की सुव्यवस्था बिगड़ जायेगी और कर्माधिकारी पुरुष भी देखादेखी कर्म छोड़ बैठेंगे। अतः ध्यानयोग रसिक पुरुष को विधिपूर्वक संन्यास लेकर ध्यान एवं तत्वमस्यादि महावाक्यों का विचार करना चाहिये।

(८) जो तत्त्व जिज्ञासा से दण्ड, कमण्डलु आदि के चिह्नों के धारणपूर्वक विधिवत् संन्यास लिया जाता है, उसमें ब्राह्मण वर्ण का ही अधिकार शास्त्र में कहा गया है। इसीको विविदिषा संन्यास कहते हैं।

(९) विविदिषा संन्यास कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस, इस भेद से चार प्रकार का होता है। इनमें से प्रथम के दो त्रिदण्ड, कमण्डलु तथा शिखा-सूत्र के सहित और तीसरा हंस एक दण्ड एवं जटाधारी तथा परमहंस एक दण्डधारी और शिखा-सूत्र का त्यागी होता है। हंस और परमहंस संन्यास के अधिकारी तीव्रतर वैराग्य के होने पर सभी आश्रमी हैं, परंतु शेष दो तो तीव्र वैराग्य होने पर भी होते हैं। इनमें भी चलने-फिरने की शक्ति न रहने पर कुटीचक तथा सामर्थ्य रहने पर बहूदक और हंस होते हैं। मंद वैराग्य वाले का संन्यास में अधिकार नहीं है।

(१०) मनमें भोगों की इच्छा रहते हुए भी पुत्र की मृत्यु, धन का नाश तथा अपमानादि कारणों से घर से विराग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो जाता है, वह मंद वैराग्य कहलाता है और इस लोक तथा परलोक के भोगों को क्षणिक, दुःखद एवं मिथ्या समझकर परमानंद की प्राप्ति निमित्त जो इनका त्याग होता है वह तीव्र वैराग्य कहलाता है। जो ब्रह्मलोकादि के सुख निमित्त त्याग होता है वह तीव्र वैराग्य कहलाता है।

(११) तीव्रतर वैराग्य वाला हंस परमहंस संन्यासी जीवनमुक्त होकर विदेहमुक्त होते हैं, और शेष दो संन्यासियों को लोकान्तरों की प्राप्ति होती है, परंतु वे भी पूर्व संन्यास के संस्कार से तीव्रतर वैराग्यवान् होकर ज्ञान द्वारा मुक्त हो जाते हैं।

(१२) कुटीचकादि तीन क्रमसंन्यासी कहलाते हैं, क्योंकि वे ब्रह्मचर्यादि आश्रमों को क्रमशः पारकर वाथापन में संन्यास लेते हैं, और परमहंस संन्यास अक्रम कहा जाता है, क्योंकि उसके लिए आश्रमों का क्रम नहीं है, अपितु उसे जिस दिन और जिस आश्रम में तीव्रतर वैराग्य हो जाय, उसी दिन तथा उसी आश्रम से संन्यास ग्रहण करने की श्रुति में आज्ञा है।

(१३) परमहंस कर्म और उपासना के त्यागपूर्वक श्रवणादि सहित महावाक्य के विचार का अधिकारी है और शेष तीन कर्म और उपासना के अधिकारी हैं।

(१४) जो प्राणान्त के समय आतुर संन्यास किया जाता है वह भी विविदिषा के ही अंतर्गत है। तथा तुरीयातीत और अवधूत संन्यास, ये परमहंस की ही चढ़ी-बढ़ी अवस्थाएँ हैं; ये दोनों ब्रह्मानंद की प्रगाढ़ मस्ती के भेद हैं।

(१५) जो ब्राह्मण लौकिक-पारलौकिक भोगों तथा यज्ञादि कर्मों से विना विराग हुए ही संन्यास ग्रहण कर लेता है, वह पतित हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(१६) जिस प्रकार द्विजातियों के संध्या, अग्निहोत्रादि नित्य कर्म हैं, वैसे ही विविदिषा संन्यासियों के लिए वेदांत-श्रवणादि नित्यकर्म कहे गये हैं, अतः जो इन्हें नित्यप्रति नहीं करता, वह पतित हो जाता है।

(१७) विविदिषा संन्यासी केवल निर्वाहमात्र वस्त्र, चरणपादुका, कमण्डलु और भिक्षा का पात्र रक्खे, इससे अधिक संग्रह न करे।

(१८) भिक्षा को क्षुधा रोग की औषधि समझकर न तो स्वादिष्ट अन्न की याचना करे और न उसके गुण-दोष कहे।

(१९) कोई एक दिन पहले या उसी दिन भिक्षा के लिये कहे अथवा तत्काल दे दे तो स्वीकार कर ले, नहीं तो निमंत्रण की प्रतीक्षा न करके बस्ती में जाकर भिक्षा माँग लेवे।

(२०) हस्तरेखा देखकर उत्पाति, अंग फड़कने एवं ज्योतिष का फल कहकर तथा नीति के उपदेश, शास्त्रार्थ और खाक-विभूत, जड़ी-बूटी आदि के द्वारा जीविका न करे।

(२१) एक का अन्न न खाय, भिक्षा के सिवा बस्ती में न जाय, अपने पूर्व के आश्रम, जाति, कुल, गोत्र, व्यवहार तथा ग्राम, आयु, विद्या और गुण का न तो कथन करे और न दूसरों का पूछे। आवश्यकता के बिना न तो बोले और न किसी प्रकार की चेष्टा ही करे।

(२२) यह सदा स्मरण रक्खे मूंड़ मुड़ाये रखना, गैरिक वस्त्र धारण करना तथा दण्ड, कमण्डलु आदि चिह्न मुक्ति के लिए नहीं है, प्रत्युत राजस स्वभाव (विलासिता) के मर्दन और भिक्षा के लिए ही हैं। चतुर्मासा में बालों को न बनवाना, नदी-नालों का उल्लंघन न करना, एक ग्राम के आश्रय रहकर उसकी सीमा का उल्लंघन न करना इत्यादि नियम भी व्यर्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की चेष्टा निवृत्तिपूर्वक राजस-तामस स्वभाव पर विजय प्राप्ति के लिए ही बनाये गये हैं।

(२३) संन्यासी सदा एकाकी, असङ्ग तथा एकांत में रहता हुआ प्रणव-जप, निदिध्यास और महावाक्य के विचार में तत्पर रहे।

(२४) वैराग्य तथा बोध के भी हो जाने पर जीवन्मुक्ति के सुख के लिये दण्ड, काषाय वस्त्रादि चिह्नों को बिना धारण किये ही जो ब्रह्मानंद में निमग्न होकर संसार में विचरण होता है, वह विद्वत् संन्यास या अलिंग संन्यास कहलाता है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री आदि सबका अधिकार है।

(२५) जो मन, वाणी और शरीर को दण्ड देता है, अर्थात् इनको वश में करता है, वस्तुतः वही त्रिदण्डी है; काष्ठ का दण्ड तो एक चिह्नमात्र है।

(२६) जो एक ज्ञानदण्ड को धारण करता है, अपने सहित निखिल जगत् को एक ब्रह्मरूप देखता है, वस्तुतः वही एक दण्डी है, काष्ठदण्ड तो इसीका उपलक्षक है।

(२७) त्रिदण्डी अथवा एकदण्डी के लिए भी ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान हो जाने पर दण्डादि लिंगों [चिह्नों] का त्याग कहा है अथवा 'ब्राह्मणों के उपकार के लिये [अपने लिए नहीं] इनको धारण भी किया रहे, क्योंकि दूसरों को दण्डादि लिंगों के साथ वही संन्यास दे सकता है जो इन्हें स्वयं धारण किये रहता है।

(२८) जिनको सर्वभूतात्मैक्य ज्ञान नहीं है तथा जिनमें नाना संकल्प, कामनाएँ एवं वासनाएँ बनी रहती हैं, ऐसे मन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

से विषयाचिन्तन करने वाले संन्यासी रौरव संज्ञक महा नर्क में गिरते हैं।

(२९) यति के लिए निःसंगता ही मुक्ति में कारण कही गयी है। संग से यति का निस्सन्देह पतन होता है।

(३०) भिक्षुक (यति) केवल नित्य प्रति के ध्यान, ज्ञान और प्रणव-जप से ही जिस किसी तथा यत्र-तत्र की भिक्षा के एवं भूल से किये हुए पापों से छूट जाता है, उसके लिये कोई दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है!

(३१) शास्त्र में भिक्षुक के लिए ध्यान, शौच इन्द्रिय-निग्रह भिक्षा और एकान्त वास के अतिरिक्त दूसरा कर्तव्य नहीं कहा गया है।

(३२) यद्यपि ज्ञान के पूर्ण हो जाने पर यति को भी सांसारिक व्यवहार बन्धन में नहीं डालते, तथापि उनसे एक तो जीवन मुक्ति का सुख नहीं मिल सकता और दूसरे स्वांगमें बट्टा लगेगा।

(३३) यदि कहो कि व्यवहार में विचरने वाले संन्यासी को जीवन मुक्ति का सुख भले ही न मिले, किन्तु उसकी विदेह तो हो ही जायेगी; तो इसका उत्तर यह है:—जो संसारी सुख के लिए जीवन मुक्ति का त्याग कर रहा है, वह पारलौकिक (स्वर्गादि) सुख निमित्त विदेह मुक्ति का भी त्याग क्यों न कर देगा?

(३४) यद्यपि वैराग्य और उपराम के अधूरे रहने पर भी पूर्णज्ञान के प्रभाव से मुक्ति तो हो ही जायेगी, परन्तु यतियों की शोभा पूर्णज्ञान के साथ-साथ । वैराग्य एवं पूरी उपरामता में ही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(३५) संन्यासी को कर्म (यज्ञादि), अकर्म (हिंसादि), [illegible] (प्रकृति) और झूठ (जगत्) का त्यागकर जिस अहं-कार द्वारा ये त्यागे गये हैं, उसका भी त्याग कर देना चाहिये अर्थात् मैं त्यागी हूँ, इस अभिमान का भी त्याग कर देना चाहिये। तदनन्तर नित्य-निरन्तर ब्रह्मवृत्ति में स्थित रहना चाहिये। ओम!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्रीरामाश्रम ग्रन्थमाला की पुस्तकें—

(१) ज्ञानामृत
(२) भव-मुक्त
(३) आत्म-प्रकाश—आपके हाथ में है।
(४) प्रेम, वैराग्यादि-वाटिका
(५) श्रीरामगीता (सानुवाद)
(६) वेदान्त-कुञ्जी
(७) भजन-मुक्तावली
(८) नवधा भक्ति-रहस्य
(९) तत्त्वदीपिका
(१०) अवधूत-कीर्तन
(११) कल्याण-निकेतन
(१२) दिनचर्या
(१३) विज्ञानसूक्तिसुधा
(१४) सङ्कीर्तन-मञ्जूषा
(१५) महिम्न-स्तोत्र (पदच्छेदान्वयार्थ भावार्थ सहित)
(१६) राम-वार्ता
(१७) राम-पत्रावली

प्राप्ति स्थानः—

अध्यक्ष—"श्रीरामाश्रम सेवा संघ"

ग्राम गगौली, पोस्ट नियाजीपुर,

जिला शाहाबाद (बिहार)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.